



साहित्य-संकलन

(गद्यभाग—प्रथम खण्ड)

080 Cu.
1373/3

प्रथम संस्करण



कलकत्ता विश्वविद्यालय

१९५२



BCU 2160

162,229

PRINTED IN INDIA

PRINTED AND PUBLISHED BY SIBENDRANATH KANJILAL,
SUPERINTENDENT (OFFG.), CALCUTTA UNIVERSITY PRESS,
48, HAZRA ROAD, BALLYGUNGE, CALCUTTA.

1814B.T.—July, 1952—E.

प्राक्कथन

कई वर्षों के उपरान्त कलकत्ता विश्वविद्यालय इंटरमीडियेट हिन्दी पाठ्य-पुस्तक का नवीन संकलन प्रस्तुत कर रहा है। यह संकलन नवीन पाठ्यक्रम-योजना को दृष्टिगत रखकर संपादित किया गया है। योजना तो इंटर व बी.ए. दोनों के ही लिए नवीन संग्रह प्रस्तुत करने की है। समयाभाव एवं अन्य कठिनाइयों के कारण बी.ए. का संकलन इस वर्ष प्रस्तुत नहीं हो सका। आगामी वर्ष में होगा।

प्रस्तुत संकलन की पाठ्यसामग्री साहित्य के अध्ययन की नवीनतम पद्धति से संकलित एवं सम्पादित की गई है। हिन्दी को सर्वोच्च राष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो गया है—उसका इतिहास एक ओर भारत की सांस्कृतिक परम्परा का इतिहास है—दूसरी ओर उसका अध्ययन भारत की राष्ट्रभाषा का अध्ययन है। इसी से प्रस्तुत ग्रंथ में उत्कृष्ट साहित्यांशों को सम्मिलित करने के साथ साथ इसका भी ध्यान रखा गया है कि वह हिन्दी के विकासक्रम और उसकी प्रवृत्तियों को ऐतिहासिक एवं भाषागत दृष्टियों से स्पष्ट कर सके। यद्यपि पाठों का कालानुसार क्रम कुछ कठिनाइयों के कारण नहीं रखा जा सका।

सामग्री का प्रारम्भिक संकलन विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी अध्यक्षों एवं अन्य चुने हुए विद्वानों के पास सुझावार्थ एवं सम्मत्यर्थ भेजा गया था। विश्व-विद्यालय ने उन सुझावों का उचित उपयोग किया है। वह उनके सहयोग का सौभाग्य और सुझावों का आभार स्वीकृत करता है।

ग्रंथ का संकलन एवं सम्पादन कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुयोग्य हिन्दी अध्यापक श्रीकल्याणमल लोढ़ा एम.ए. ने किया है। इतने अल्प समय में जिस लगन और तत्परता के साथ उन्होंने यह कार्य पूर्ण किया वह उनकी सेवा-भावना और कर्तव्यपरायणता का सूचक है। हिन्दी विभाग के विद्वान् अध्यक्ष प्रो० ललितप्रसाद मुकुल के दीर्घकालीन अनुभव जन्य सुझाव एवं प्रदर्शन हमें अत्यधिक सहायक हुए हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय मुद्रणालय के अध्यक्ष श्रीशिवेन्द्रनाथ कांजिलाल एवं अन्य कर्मचारियों के परिश्रम का ही फल है कि पुस्तक एक ही महीने के भीतर मुद्रित एवं प्रकाशित हो सकी। वह गद्य (१म और २य खण्ड) और पद्य (३य खण्ड) में प्रस्तुत की जा रही है।

विश्वविद्यालय की ओर से मैं उन समस्त लेखकों एवं कवियों का आभार मादता हूँ जिन्होंने अपनी रचनाओं को सम्मिलित करने की अनुमति प्रदान की है। ग्रंथ प्रस्तुत है—यथायोग्य स्थान पाएगी ही।

आशुतोष भवन,
कलकत्ता,
२८-७-५२

श्री श्रीकुमार वंदनोपाध्याय,
अध्यक्ष, आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
कलकत्ता विश्वविद्यालय।

सूची

विषय	लेखक	पत्रांक
१। सूरदास की वार्त्ता	गोकुलनाथजी	... १
२। खाती कौ बेटा	(लोकवार्त्ता)	... ८
३। पाटणदे	(लोकवार्त्ता)	... ११
४। कृष्णजन्म	लल्लूलाल	... १५
५। नासिकेतोपाख्यान	(अनुवादक) सदल मिश्र	१७
६। समर्पण	भारतेन्दु	... २१
७। आंसू	पंडित बालकृष्ण भट्ट	... २३
८। राजा भोज का सुपना	राजा शिवप्रसाद	... २६
९। खड़ी बोली	पंडित पद्मसिंह शर्मा	... ३६
१०। कवियों की ऊर्मिल्ला-विषयक उदासीनता	आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी	४५
११। पीछे मत फेंकिये	बाबू बालमुकुन्द गुप्त	... ४६
१२। करुणा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	... ५४

साहित्य-संकलन

सूरदास की वार्ता

सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते, तब कितनेतक दिन पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु अडेल तें ब्रज कूँ पधारत हते । सो कछुक दिनमें श्रीआचार्यजी आप गऊघाट पधारे । ता समय श्रीआचार्यजी के संग सेवकन को बहोत समाज हतो । सो सब वैष्णव सहित श्रीआचार्यजी आपु श्रीयमुनाजी में स्नान किये । ता पाछें संध्यावंदन करि पाक करन को पधारे । और सेवक हू सब अपनी अपनी रसोई करन लगे । ता समय एक सेवक सूरदास को तहाँ आयो । सो बाने जायके सूरदास को खबरि करी, जो—सूरदासजी ! आज यहां श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं । जो जिनने कासी में तथा दक्षिण में मायावाद खंडन कियो है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियो है ।

तब यह सुनि के सूरदास ने अपने सेवक सों कह्यो जो—जब श्रीवल्लभाचार्यजी भोजन करिकें निश्चितता सों गादी तकियान के ऊपर बिराजें ता समय तू हमको खबरि करियो । जो—मैं श्रीवल्लभाचार्यजी के दरसन को चलूंगी । तब वह सेवक दूरि आय के बैठि रह्यो । सो जब श्रीआचार्यजी आपु भोजन करिके गादी तकियान पे बिराजे, और सेवक हू सब आस पास आय बैठे, तब वा सेवक ने जाय के खबरि करी । तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन को लेकर श्रीआचार्यजी के दरसन को आये । सो तब आयके श्रीआचार्यजी को साष्टांग दंडवत करी ।

तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे, जो—सूर ! कछू भगवत्-जस वर्णन करो । तब सूरदास ने श्रीआचार्यजी को दंडवत करि कह्यो, जो—महाराज ! जो आज्ञा । ता पाछें सूरदास ने यह पद श्रीआचार्यजी आगे गायो । सो पद :—

राग घनाश्री—हौं हरि सब पतितन को नायक ।

• फेरि दूसरो पद गायो, सो पद—“प्रभु हौं सब पतितन को टीको ।”

सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु सूरदास सों कहे, जो—सूर हूँ कै ऐसो धिधियात काहे कों हैं ? सो तासों कछु भगवल्लीला वर्णनन करि ।

भावप्रकाश—ताको आसय यह हे, जो—जीव श्रीभगवान सों विछुरयो, सो तब पतित तो भयो । सो ताकों बहोत कहा कहनो, तासों भगवल्लीला गावो, जासों शुद्ध होय ।

तब सूरदास ने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी, जो—महाराज ! मैं कछु भगवल्लीला समुझत नाहीं हूँ । तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख तें कहे, जो—सूर ! श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो, जो हम तुमकों समुझाय देंगे । तब सूरदास प्रसन्न होय कें श्रीयमुनाजी में स्नान करि के अपरस ही में श्रीआचार्यजी पास आये । तब श्रीआचार्यजी ने कृपा करि कें सूरदास कों नाम सुनायो, ता पाछें समर्पन करवायो । पाछें आप दसम स्कन्ध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास कों सुनाये ।

भावप्रकाश—अष्टाक्षर मंत्र सुनायो तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष मिटाये, और सात भवित भई । पाछें ब्रह्मसंबंध करवायो, तासों सात भवित और नवधा भवित की सिद्धि भई । सो रही प्रेमलक्षणा, सो दसम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाये । तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में स्थापन भई, सो प्रेमलक्षणा भवित सिद्ध भई ।

सो सगरी श्रीसुबोधिनीजी को ज्ञान श्रीआचार्यजी ने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो । तब भगवल्लीला जस वर्णन करिवे को सामर्थ्य भयो । तब अनुक्रमणिका तें सगरी लीला हृदय में स्फुरी । सो कैसे जानिये ? जो श्रीआचार्यजी आप दसम स्कन्ध की सुबोधिनीजी में मंगलाचरण की प्रथम कारिका किये हैं, सो कारिका कहत हैं । श्लोक :—

“नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि-शायिनं ।

लक्ष्मीसहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥”

सो या मंगलाचरण के अनुसार सूरदास ने श्रीआचार्यजी के आगे यह पद करिके गायो । सो पद :—

राग बिलावल—‘चकईरी ! चल चरणसरोवर जहां नहि प्रेम वियोग ।’

सो यह पद दसमस्कन्ध की कारिका के अनुसार किये हैं ।

श्लोक—‘लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधि ।’

जैसे श्लोक में कह्यो है, तैसेही सूरदास ने या पद में कही जो—

“जहां श्रीसहस्र सहित नित क्रीडत सोभित सूरजदास ।”

सो यामें कहे । तामें जानि परी, जो—सूरदास कों सगरी लीला श्रीसुबो-
धिनीजी की स्फुरी ।

सो सुनिके श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये । और जाने, जो-अब लीला को अभ्यास भयो । सो तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें सूरदास सों आज्ञा किये, जो—सूर ! कछू नंदालय की लीला गावो । तब सूरदास नें नंद महोत्सव को कीर्तन वर्णन करिके गायो । पद :—राग देवगंधार—‘ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ।’

सो यह बड़ी बधाई गई । सो श्रीनंदरायजी के घरको वर्णन किये, तहां ताई तो श्रीआचार्यजी आप सुने । ता पाछे गोपीजन के घर को वर्णन करन लागे तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे जो—

‘सुन सूर सवन की यह गति जो हरि-चरन भजे ।’

सो या भोग की तुक आपु कहि कें सूरदास कों चुप करि दिये ।

भावप्रकाश—सो यातें जो-ब्रजभवतन को आनंद है सो भगवदीयन के हृदयमें अनुभव-योग्य है । सो बाहिर प्रकास होय तासों सूरदासको थांभि दिये । और सूरदासजी के हृदय में यह भी आयो हतो, जो मैंने सेवक किये हैं तिनकी कहा गति होयगी ? तब श्रीआचार्यजी ने कही :—‘सुन सूर ! सवन की यह गति जो हरिचरन भजे ।

तब श्रीआचार्यजी आप प्रसन्न होय के कहे, जो—मानों सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाड़े हैं । सो ऐसी कीर्तन गायो ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी ने सूरदास कूं ‘पुरुषोत्तम सहस्रनाम’ सुनायो । तब सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी । सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्रीभागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये । तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि वर्णन किये हैं ।

ता पाछे गऊघाट ऊपर श्रीआचार्यजी आप तीन दिन रहे । सो तब सूर-
दासने जितने सेवक किये हते, सो सबकों श्रीआचार्यजी के सेवक कराये । ता

पाछें श्रीआचार्यजी आप ब्रज में पधारे। तब सूरदास हू श्रीआचार्यजी के संग ब्रज में आये।

सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप गोकुल पधारे। तब श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख सों कह्यो जो—सूर ! श्रीगोकुल को दरसन करो। तब सूरदासजी ने श्रीगोकुल कों साष्टांग दंडवत किये। सो दंडवत करत ही श्रीगोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी।

तब सूरदासजी अपने मन में विचारे, जो—श्रीगोकुल की लीला में बरनन कैसें करौं। सो काहे तें—जो श्रीआचार्यजी को मन श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्रीनवनीतप्रियजी को कीर्तन श्रीगोकुल की बाल-लीला को बरनन, एसो पद सूरदासजी ने गायो। सो पद—
राग बिलावल—‘सोभित कर नवनीत लिये।’

सो यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आप सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो तापाछें सूरदास ने और हू पद बाललीला के श्रीआचार्यजी कों सुनाये। ता पाछें श्रीआचार्यजीने विचारयो—जो श्रीगोवर्द्धननाथजी को मंदिर तो समरायो, और सेवा हू को मंडान भयो। तातें सूरदास कूं श्रीनाथजी के पास राखिये। तब समे समे के सगरे कीरतन को मंडान और भयो चाहिये। सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गाय के कृतार्थ बहोत होंयगे।

तब यह विचारिके सूरदास कूं संग लेके श्रीआचार्यजी आप श्रीगोवर्द्धन पधारे, सो ऊपर पधारके श्रीनाथजी के दरसन किये। तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख सों सूरदास सों कहे जो—सूर ! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करो और कीर्तन गावो।’ तब सूरदासजी ने श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन किये। ता पाछें सूरदासजी ने प्रथम विज्ञप्ति को पद दैन्यता सहित गायो। सो पद—

राग धनाश्री—‘अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।’ * * *

सूरदास की सब अविद्या दूर करहु नंदलाल !

सो यह पद सूरदासजी ने श्रीनाथजी कों सुनायो। सो सुनि के श्रीआचार्यजी आप सूरदास सों कहे जो—सूरदास ! अब तो तिहारे मन में कछू अविद्या रही नांही, जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है। तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्य पूर्वक स्नेह होय।

भावप्रकाश—परंतु भगवदीय जितने हैं सो तितने की यही बोली है जो अपने को हीन कहत हैं। सो यह भगवदीयन को लक्षण है। और जो कोई अपने को आछो कहै और आपुनी बड़ाई करे, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है।

तब श्रीआचार्यजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे सूरदासजी ने माहात्म्य स्नेहयुक्त कीर्तन किये। सो पद—

राग गौरी—‘कौन सुकृत इन ब्रजवासिन को वदत विरंचि शिव शेष’

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आप बहोत प्रसन्न भये।

भावप्रकाश—क्यों जो—जैसो श्रीआचार्यजी आपु पुष्टिमार्ग प्रगट किये, ताही अनुसार सूरदासजी ने यह कीर्तन गायो। सो श्रीआचार्यजी के मारग को कहा स्वरूप है? जो माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है, सो ठाकुरजी को बहोत प्रिय है। परन्तु जीव माहात्म्य राखे। सो काहेतें? जो माहात्म्य बिना अपराधको भय मिट जाय। तासों प्रथम दसा में माहात्म्य युक्त स्नेह आवश्यक चाहिये। और ब्रजभक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है। तासों भक्तन के स्नेह के आगे श्रीठाकुरजी को माहात्म्य रहत नांही। सो ठाकुरजी स्नेह के बस होय भक्तन के पाछें २ डोलत है। सो जहां ताई एसो स्नेह नांही होय तहां ताई माहात्म्य राखनो। सों जब स्नेह को नाम ले के माहात्म्य छोड़े और श्रीठाकुरजी के आगे बैठे, बात करे और पीठि देय तो भ्रष्ट होय जाय। तासों माहात्म्य बिचारे और अपराध सों डरपे, तो, कृपा होय। और जब (सर्वोपरि) स्नेह होयगो तब आपही तें। स्नेह एसो पदार्थ है जो—माहात्म्य कूं छुड़ाय देयगो। सो दसम स्कंधमे बरनन है—

जो श्रीभगवान बारंवार माहात्म्य ब्रजभक्तनकों और श्रोयसोदा जी को दिखायो। सो पूतना बध करि, सकट, तृनावर्त करि, यमलार्जुन करि, बकासुर, धेनुक, कालीदमन करिकें लीला में माहात्म्य दिखायो। परंतु ब्रजभक्तन को स्नेह परम अद्भुत अनिर्वचनीय है। तासों माहात्म्य तथा ईश्वरभाव न भयो। सो एसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करें ताकों आपही तें माहात्म्य छूटि जायगो। और जाको स्नेह पति, पुत्र, स्त्री, कुटुंब में तथा द्रव्य में है, और अपने देह सुख में है सो भगवान को माहात्म्य छोड़ि लौकिक रीति करे तो श्रीभगवान को अपराधी होय। तासों वेद मर्यादा सहित श्रीठाकुरजी के भय सहित सेवा करे, और सावधान

रहे। सो यह श्रीआचार्यजी महाप्रभु के मारग की रीति है। तासों माहात्म्य पूर्वक स्नेह करिये। और माहात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो—समय समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहै, ताको नाम माहात्म्य पूर्वक स्नेह कहिये।

पाछे श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—सूर ! तुमकों पुष्टिमारग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धनधर के यहां समय समय के कीर्तन करो ! ता समय सेन भोग सरि चुबधो हतो, सो तब मान के कीर्तन सूरदास ने गाये। सो पद—

राग बिहागरो—बोलत काहे न नागर बैना'। २ सुखद सेजमें पोढ़े रसिक-वर'। ३ पोढ़े लाल राधिका उर लाय'।

सो पाछें याप्रकार सों कीर्तन सूरदासजी नें नित्य प्रातःकाल के जगायवे तें लेके सेन पर्यंत के हजारन किये।

वार्ता प्रसंग २—और एक समय सूरदासजी पांच सात वैष्णवन के संग मारग में चले जात हते। सो तहां दस पांच जने चोपड खेलत हते। सो चोपड के खेल में ऐसे लीन भये हते सो मारग में गैल में काहू आवते जाते मनुष्य की कछू खबरि नांही।

सो या प्रकार उनकों मगन देखिकें सूरदासजी ने अपने संग के वैष्णवन के आगे एक पद गायो। और उन वैष्णवन सों सूरदास जी ने कह्यो जो—देखो, यह प्राणी मनुष्यजन्म वृथा खोवत है। जो श्रीभगवान ने मनुष्य-देह अपने भजन करिवे के लिये दीनी है। सो या देह सों यह प्राणी वृथा हाड कूटत है। सो यामें लौकिक में तो निदा है जो—यह जुवारी है। और अलौकिक में भगवान सों बहिर्मुखता है। तासों भगवानने तो ऐसी जिनकों मनुष्य-देह दीनी है, तिनकों ऐसी चोपड खेली चाहिये। सो ता समय सूरदासजी ने यह पद करि के संग के वैष्णव हते, तिनकों सुनायो। सो पद—

राग केदारो—मन ! तू समझ सोच विचार।

भक्ति बिना भगवान दुर्लभ कहत निगम पुकार ॥

साधु संगत डार पासा फेरि रसना सार।

दाव अब के पर्यो पूरो, उतरि पहली पार ॥

छांडि सत्रह सुन अठारे, पंच ही कों मार ।
दूरि तें तज तीन काने चमक चोंक बिचार ॥
काम क्रोध मद लोभ भूल्यो ठग्यो ठगिनी नार ।

सूर हरि के पद भजन विन चल्यो दोउ कर झार ॥

सो सुनिके उन वैष्णवननैं सूरदास सों कह्यो जो—सूरदासजी ! या पदमें समुझ नांही परी है । तासों हमकों अर्थ करिके समुझावो, सो तब समझ्यो जाय ।

तब सूरदासजी उन वैष्णवन सों कहे । जो—

तीन वस्तु चोपड़ में चाहियें, समुझ सोच और विचार । सो ये तीन्ही वस्तु भगवान के भजन में हू चाहिये (क्यों ?) जो—जैसे पहले समुझै तब चोपड़ खेलेगो, सो तैसे ही भगवान कों जानेगो तो भजन करेगो । और चौपड़ में सोच होय जो—एसो फांसा परे तो मैं जीतू । सो तैसे ही या जीव कों काल को सोच होय, तब यह जीव प्रभु की सरन जाय । और (तीसरी वस्तु जो) विचार, सो यह जो—विचार के गोट कों फांसा के दावकू चले जो—यहां नांही मारी जायगी इत्यादि । सो तैसेही विचार वैष्णव कों होय, जो—यह कार्य मैं करत हूं सो आछो है, के बुरो है ? तब यह जीव बुरो काम छोड़िकें भगवतधरम की चाल में चले । और चौपड़ में फांसा के दाव परें तब दोऊ ओर के मनुष्य पुकारत हैं । सो तेसे ही जगत में निगम जो वेद पुराण सो पुकारि के कहत हैं जो—भक्ति बिना भगवान दुर्लभ हैं, सो तासों कोटि साधन करो । और चौपड़ में दूसरो संग मिले तब चोपड़ खेली जाय, सो तैसे ही भगवान की भक्ति में भगवदीय वैष्णव की संगति होय तब भक्ति बडे । ओर चौपड़ खेलिवेवारे के मन में (जैसे) अपने दाव को सुमिरन रहत हैं जो—यह दाव परे तो मैं जीतू, सो तैसे ही रसना सों यह जीव भगवद्वात्ता में मन लगायके सब रस को सार रूप (एसो भगवन्नाम) कह्यो करे । और (जैसे) चौपड़ में सुंदर पूरो दाव परे तब गोट पार जाय, और तब उतरि के घर में आवे, और मरिवे को भय मिटे । सो तैसे ही मनुष्य देह संसार सों पार उतरिवेकों पूरो दाव बड़ी पुन्याई सों मिले हैं, सो तो या देह सों भगवदाश्रय करि संसारतें पार उतरि जाय । 'राखि सत्रे सुनि अठारे' चोपड़ में सत्रे अठारे बडे दाव है । सो तैसे ही जगत में सब पुराण हैं, सो तिनही कों राखि, सुनि अठारे

जो—श्रीभागवत सुनन कों (और) पुराण हू कों धरि राख । और पांचों जो इन्द्रिय ; पंचपर्वा अविद्या है, सो इनकूं मार ।

—गोकुलनाथजी (मूल), हरिराय (टीका)

खाती कौ बेटा

(१)

एकु राजा कौ बेटा, एकु खाती कौ और एकु बजीर कौ बेटा अपनी अपनी सुसरारि कूं चले । आगें जाइके राजा के की सुसरारि जा सहर में हति काई ब्वाई सहर में पहुँचे । राजा कौ बेटा तौ अपनी सुसरारि कूं चलयी गयी ।

बु खाती कौ बेटा और बजीर कौ बेटा एक सराय में ठहरिबे चले । रस्ता में उन्हें एक डोकरी पाई । बु उन्हें देखिकें रोइबे लग गई । खाती के नें बजीर के ते कही, चल तू तौ आगें चल, मैं जा डोकरी ते जाके रोइबे कौ कारनु पूछि कं आमतूँ । बजीर कौ आगें बढ़ि गयी ।

अब बु खाती कौ बेटा ब्वा डोकरी के जीरें गयी । ब्वानें कही, बेटा जा सहर में तुमें ठहरिबे कूँ कहूँ जग मिलैगी नांय और तुम जाय कें सराय में रंडी की बगल बारी कोठरी में ठहरोगे । ब्वा रंडी के पेट में ते राति में एक स्यांपिनि निकरैगी और बु तुमें खाइ जायगी । ब्वानें जि बात सुनिकें अपनी रस्ता गही ।

म्वाँ पहुँचि कें वानें अब बु बजीर कौ छोरा तौ ब्बामें ठहराय दीयी और आपु जगिबे लग्यौ । राति कूँ स्यांपिनि निकरी ओर बजीर के छोरा माऊँ गई । खाती के छोरा नें तरवारि लैके स्यांपिन के टूंक-टूंक करि दीने ।

सबेरें बु स्यांपिन रंडी के मुंह में घुसी न । सोई रंडी सबेरें भएँ मरि गई ।

(२)

खाती के बेटा नें सोची, ला अबई तौ भौतु राति ऐ । ला और सहर के हाल चाल देखू ।

बु राजा कौ बेटा अपनी सुसरारि में जायकें राति कूँ सोइ गयी । ब्वाकुं जो ब्याही काई ब्वाकी एक बाबाजी ते रीति भाँति ई । बु राति कूँ ब्वाके जोरें गई । बाबाजी नें पूछी : अरी तू आजु इतनी देर करि कें कैसें आई । ब्वानें ज्वाबु दीयो मेरे पति आए एँ । जाई ते देर है गई । बाबाजी ऐ आइ गई रिस । ब्वानें झट्ट ब्वाकी नाक काटि लई ।

बु भाजि कें अपने घर आई । आइकें ब्वानें हल्ला मचायो कें मेरे पति नें मेरी नाक काटि लई । सब भाजे आए । राजा कौ बेटा बाँधि लीयो ॥ और सोची : जाइ सबेरें राजा के दरवार में लै चलिंगे ।

खाती कौ बेटा जा सबरी बात ऐ देखि रह्यौ ।

(३)

खाती के बेटा नें सोची ला भाई और डोलि लूँ ।

सोई बु एक माता के मढ़ पै पहुँच्यौ । म्वाँ जाइकें कहा देखै कि चारि चोर आए । एक नें आइकें माता ते कही : माता मैया आजु मोइ चोरी में ज्यादा परापति है जायगी तौ मैं तोपै आधौ मालु चढ़ाइ दुंगो । दूसरे नें कही : मैया मैं तौ बहुत थोरो सौ मालुई राखुंगो और ब्वाकी सबै तोई पै चढ़ाइ दुंगो । तीसरे नें कही : चारि-छै पैसा राखुंगो और नई सबै तोई पै चढ़ाइ दुंगो ॥ चौथे चोट्टा नें कही : देवी मैं जा राजा की बेटी के सीस ऐ तोपै लाइकें चढ़ाइ दुंगो ।

ब्वा दिना ईश्वर की करनी ऐसी भई कि सबके हाथ खूब मालु लग्यौ । सोई सबनें आइकें अपने अपने कहिवे के अनुसार कामु कर्यौ । अब चारों जने राजा की बेटी ऐ लँबे कूँ चले । राजा की बेटी छत्ति पै सोइ रही । चारथौ जने ब्वाकी खाट ऐ उठाइ लाए । बु खाती कौ बेटा ऊ उनके पीछें-पीछें चलयौ गयी । बु जायके मन्दिर में घुसि गयी । मन्दिर की किवार के पीछें खाती कौ बेटा ठाड़ी हंगौ । चोट्टानु राजा की बेटी मन्दिर में जाइकें धरि दई ।

राजा के बेटा नें तरवारि खैचि लई और दरबज्जे के जोरें ठाड़ी हैगौ । पहली चोट्टा जब घुसिबे कूँ गयी सोई ब्वानें, ब्वाकी मूँडु भुट्टा सी उड़ाइ दीयी । ऐसैई ब्वानें चारघौ चोरन के सीस काटि दीए ।

अब खाती के नें राजा की बेटी ते कही : अरी भैना । अब तू जा । ब्वानें कही मोय तू पहुँचाय कें आ । बु ब्वाके घर तक पहुँचाइबे गयी । फिरि ब्वानें कही : मेरी चित्तरसारी तक पहुँचाय । बु भ्वाँ ऊ तक चलौ गयी । अब ब्वा राजा की बेटी नें कही : आ अब तू मेरी सेज पै सोइ । आजु ते तू मेरी मालिकु और मैं तेरी बहू । खाती के नें कही : ऐसौ नाँए है सकतु । मैं तोते भैना कहि चुक्यौ ऊँ । सोई ब्वानें हल्ला मचाइ दीयी—‘चोर चोर’ । अब पहरेदार आए औरबु पकरि लीयी ।

(४)

सबेरें भएँ तीन्घों जने पकरि कें आए ।

पहलें बजीर के छोरा ते पूछी : तँनें रंडी चाँ मारि दई । ब्वानें कही : श्री महाराज मोय बिरकुल्लि जा मामले की खबरि नाँए । खाती के नें ब्वाकी सबु बात कहि दई और सबुत में मरी मराई स्यांपिनि दिखाइ दई । बजीर कौ छोरा ती जा तरह बरी हैगौ ।

अब ब्वा के बेटा ते पूछी कि तँनें चाँ अपनी बहू की नाँक काटी ।

ब्वानें कही : मोइ कछू खबरि नाँए ।

खाती के नें ब्वाऊ कौ सबु अहवालु बताइ दीयी और सबुत में बाबाजी की ल्हास दिखाइ दई । राजा कौ बेटाऊ बरी हैगौ ।

अब ब्वा खाती के ते बात पूछी गई । ब्वानें कहि दई सबु बात और सबुत में चारघौ चोट्टान की ल्हास दिखाइ दई । बु हू बरी हैगौ ।

जा तरह तीन्घों बरी हैकें अपने अपने घरकूँ खुसी ते गए ।

(लोकवार्त्ता)

पाटणदे

एक ता राज्जा, उसकी एक ती बेट्टी पाटणदे। राज्जाकी राणी बेमार होके खाट पं पड़ी ती। उसके सामणे चिड़ियाका घोसला ता। उसमें पैली चिड़ियाके बच्चे रक्खे ते। चिड़िया गई मर। दूसरी चिड़िया आई, उसने पैलीके बच्चेकू काड़के गेर दिये, अर अपने रख दिये। राणीने देखा, उनने क्या अक—अपने बच्चे तो इनने रख दिये घोसलेमें, अर उसके काड़ गेरे।

राणीकू बीत सोच हुआ—ओहो, इनने ये बच्चे गेर दिये अर अपने रख दिये, कोई मेरी पाटणदे कू बी ऐसे ही काड़ देगा।

राजा आया तो राणीने क्या—मैं तो मर जाउँगी, तुम दूसरा व्या अपना ना करियो, नई तो म्हारी पाटणदे कू बी ऐसे ही दुख होगा, जैसे चिड़िया के बच्चों कू।

—देखा जायेगा राणी, अबी तो तू अच्छी भली है।

राणी मर गई। राज्जाकू क्या लोग-बागोंने अक “भई तू अपना व्याव कर ले।” राज्जाने व्याव कर लिया। दूसरी राणीके बी एक लौंडिया हुई, नाम रक्खा हब्बो। राणी अपने बच्चीके जुट्टे-कुट्टे थालियोंमें से पूछ-पांछके दे देव ती पाटणदे कू। वो बेचारी बी मन मारके खाव ती, उसका पेट नई भरै ता।

रातकू पाटणदे सोई तो उसकी मा सुपणे में आई। उनने बधा—पाटणदे मेरी बेट्टी, सोवे है कि जागूगे?

—मा मा, मैं ना सोऊँ ना जागूँ, मैं तो भुक्की रहूँ माय-माय पुकारूँ हूँ।

—बेट्टी तू भुक्की रहै है। तू एक काम करा कर, जंगलमें बड़ी अच्छी बेरी है, बीत मिट्ठी वेर आवे है। वो खाय आया कर।

फेर वो खाय आया करैती, खाते अच्छी चेतन हो गई।

छोटटी राणीकी बेट्टी चार-पांच बरसकी अच्छी सयाणी हो गई। राणीने अपनी बेट्टीसे क्या—“यो लौंडिया म्हारा नाम कड़वावैगी। यो रोटी किसीक खावके आवै है। मैं तो इसे बंची—खुंची दे दूँकि मोट्टी ना होवे अर यो किसीके खाय आवै है। इसके साथ जइयो, देखियो तो किसक खाइक आवे है, जो ऐसी मोट्टी हो गई।”

हब्बो पाटणदेके साथ हो गई—“बिब्बी, मैं बी तेरे साथ चलूँ हूँ।” पाटणदेने जंगलमें जाके मिट्ठे बेर तोड़ के खा लिये। हब्बो बी बेर पै हात चलाणे लगी। उसके कन्टा लग गया हाथमें। वो रोत्ती-रोत्ती अपनी अम्मा पै आई। उनने कया—“मा, इनने बेर खाये खूब, इसे तो कन्टा लगा नी, अर मेरे लग गया।”

सुणके राणी अनसनपाट्टी लेके पड़ गई। बस आया राज्जा। राज्जाने कया—क्यूँ पड़ी हो?

—मैं तो नोई पड़ी हूँ।

—यो कया बात है, उट्ठो बी।

राणीने कया—मैं तो जब उट्ठूँगी, जब वे बेरी कट जावेंगी।

—राणी, भला तुझे कया मिलै है, बेरी कटवाके। भुक्के-प्यासे गवालिये आइ के खा लेवें हैं।

—नई, कटवाओ ई।

राज्जाका हुकम ता, बेरी कटवा दीं सब।

पाटणदे फेर सुक्कण लगी। उसे बासी-कुसी बचे-खुचे टुकड़े देवें ती, के किसी तरा मर जावे यो।

फेर सुपणेमें मां आई पाटणदेके घोरे अर कया—पाटणदे बेट्टी, सोवै है कि जागै है?

—मा, ना मैं सोऊँ, ना मैं जागूँ, मैं तो भुक्की रहूँ, माय-माय पुकारूँ हूँ।

—बेट्टी, तो एक काम करियो, गाय आवै हैं खेर में चुगनेकू। तू उनका थण पकड़के पी लिया करियो, तेरा पेट भर जायगा।

बस वो थण पकड़के पी लिया करै ती, अर वो फेर मोट्टी हो गई।

छोट्टी राणीने फेर अपनी बेट्टी से कया—हब्बो, तू फेर इसके साथ जइयो। यो किसीके खा आवै।

हब्बो फेर नू कती उसके साथ हो ली—बिब्बी, मैं बी तेरे साथ चलूँ हूँ।

जंगलमें जाके खेरकी गायका थण पकड़के पाटणदेने पी लिया। हब्बोने बी हात चलाया के मैं बी पी लूँ। उसके गायने लात मार दी—वो तो सतकी गाय ती। हब्बो फेर रोत्ती-रोत्ती मा पै आई—“मा इनने तो दूध पी लिये, इसे तो गाय ने मारी नी लात, अर मेरे मार दी।

राणी फेर अगले दिन अनसनपाट्टी लेके खाट पै पड़ गई। फेर राज्जा आया—आज क्यों पड़ी है ?

—नोई पड़ी हूँ।

—नई, कुछ बात है जरूर।

—बात है, के यो जो खेरकी गायें जंगलमें जावे हैं, इन सबकू कसाइयोंकू दिवा दो।

—राणी, तुझे क्या मिलै है, भुक्के-प्यासे गवालिये चार पैसे मजूरी करै हैं, तेरी-मेरी गाय लाके चुगावे हैं, अर अपना पेट भरै हैं।

—बस मेरा तो योई हुकम है के सबकू कसाइयोंकू दिवा दो।

राज्जाका हुकम ता, सब कसाइयोंकू दिवा दी गायें।

राज्जा कायल हो गया, अर उनने नाईकू बुलवाके कया, अक “इन लौंडियोंकी सगाई कर आवो दोन्नोंकी, पराये घरकी हो जायेंगी, तो मैं छुट जाऊँगा”।

जब बी हब्बोकी माने नाईसे कया—पाटणदेकी तो ऐसे घर कर अइयो, जो बौत गरीब हो, अर मेरी हब्बोकी करियो खूब सौकार घर।

नाई करि आया सगाई, पाटणदेकी तो खूब सौकार घरमें अर हब्बोकी गरीबसे।

राज्जाने एक मढे व्याव करा दोन्नोंका। पाटणदेकी आई बरात खुब सजिल्ली बाज्जे-गाज्जेके साथ अर हब्बोकी में आये ढपड़े ई।

छोट्टी राणी कूदती-फांदती फिरी अक “मरी हब्बोकी तो बरात आई मामुल्ली अर पाटणदेकी आई खुब बाज्जे-गाज्जेसे। मैं तो अपनी लौंडियाका गौणा करूँ पीच्छे पैले पाटणदेका गौणा करूँ।

पाटणदे गौणासे लौटके निरा सुनेरा पैरके आई। हब्बो नोई कांसी-पित्तल मामुल्ली पैरके आई। राणीने कया—पाटणदे बेट्टी, आ तेरा सिर कर दूँ।

राणीने एक लोहेकी कील लेल्ली, हतोड़ा बी ले लिया, अर पाटणदेकू कया—बेट्टी, यो तेरी चीज मेल्ला विकणी हो जावेंगी। इनें अब तू हब्बोकू पैरा दे, फेर लेके पैर लीजो जब तेरा सिर कर लूँ।

उनने पेरा दी। राणीने उसके सिरपर कील ठोंकके चिड़िया करके उड़ा दी, अर अपनी लौंडिया उसी लौंडे पाटणदेके मालकके साथ भेज दी।

गई वो अपनी ससु कै । पाटणदे ती खबसूरत अर हब्बो ती वैसी ई कम-सूरत । देखणवाली लुगाइयोंने क्या—पाटणदे, तू तो बौत ई अच्छी लगै ती, यो क्या हो गया ?

हब्बोने क्या—अजी, मेरे माता लिकली तीं, रूप ले गई माता मेरा ।

उनन भका दिया लुगाइयोंकू । वो कहणे लगीं नुक “ले गई होगी माता रूप ।” पाटणदे चिड़िया हो गई । वो रातमें अपने मालकके बागमें आई । मालक उसका बागमें सोवै ता । पाटणदेने क्या—

“तेरी पाटणदे फिरे डाल-डाल, तेरी हब्बो करे राज ।”

उनने क्या—बड़ा अच्छी चिड़िया है, बोल्ली कैसी प्यारी है । इसे तो हम पकड़ेंगे ।

पींजरा रख दिया अर चिड़िया आगी उसमें । घरकू लाके उनने अपनी मा से क्या—मा, गरम पाणी करवइये, मैं इसे नुवाऊंगा ।

हब्बो सुण रई ती, वो सुबो-सुबो उठके झाड़ू दे, पींजरेकू गेर आई कुड़े पै ।

राज्जाका लौंडा आया, उनने मा कू क्या—कूड़े पै किन्ने फेंका यो ?

माने क्या—और ने तो झाड़ू दी नी, तेरी बऊने दी भइया ।

राज्जाका लड़का चिड़ियाकू ठाके लाया, अर सावण लगाके खूब नुवाइ रया ता । रगड़ते रगड़ते सिर की कील उसकी थेल्ली में चुब गई, उनने कील पकड़के खींच ली । वो जो ती, बोई पाटणदे बन गई । ती वो तो पाटणदे, कील तो नोई ठुकरई ती ।

राज्जाने क्या—तू कौण है ? भूत-बलाय देव-दाना कौण है तू ?

—मैं भूत-बलाय नी, मैं तो तेरी राणी पाटणदे हूँ, अर यो मेरी भेन्ना हब्बो है । मेरेकू कील ठोकके चिड़िया करके इसकी माने उड़ा दी अर इसे तेरे साथ गौणा कर दिया ।

राज्जाने क्या—क्या बणावै अब इसका ?

पाटणदेन क्या—इसके हाथ-पैर तोड़के थेल्लेमें भरके इसकी मा कै भेज दो ।

उनने थेल्लेमें भरके सीके भेज दिया । हब्बोकी मा खुस हुई के मेरी हब्बोने

कैसी-कैसी चीज भेजी है। खोलके देखा तो उसमें कई हाथ हैं, कई पां हैं, कई सिर हैं। फेर वो रोई "हाइ मेरी हब्बो, हाइ मेरी हब्बो।"

इसलिये जो किसीके साथ बुरा करै है, उसे नतीजा मिले जरूर।

(लोकवार्ता)

कृष्ण-जन्म

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, जिस समै श्रीकृष्णचंद जन्म लेने लगे, तिस काल सबही के जी में ऐसा आनंद उपजा कि दुख नाम को भी न रहा, हरष से लगे वन उपवन हरे हो हो फूलने, फलने नदी नाले सरोवर भरने, तिनपर भांति भांति के पंछी कलोलें करने, और नगर नगर गाँव गाँव घर घर मंगलाचार होने ब्राह्मन यज्ञ रचने, दसों दिसा के दिगपाल हरषने, बादल ब्रजमंडल पर फिरने, देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने, विद्याधर, गंधर्व, चारन, ढोल, दमामे, भेर, बजाय बजाय गुन गाने। और एक ओर उर्वसी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समै भादों ब्रदी अष्टमी बुधवार रोहिनी नक्षत्र में आधी रात श्रीकृष्ण ने जन्म लिया, और मेघ वरन, चन्द मुख, कमल नैन हो, पितांबर काछे, मुकुट धरे, बैजंती माल और रतनजटित आभूषन पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये वसुदेव देवकी को दरसन दिया। देखते ही अचंभे हो बिन दोनों ने ज्ञान से विचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा—हमारे बड़े भाग जो आपने दरसन दिया और जन्म मरन का निबेड़ा किया।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई जैसे जैसे कंस ने दुख दिया था। तहाँ श्रीकृष्ण- चन्द बोले—तुम अब किसी बात की चिंता मन में मत करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुख के दूर करनेही को औतार लिया है, पर इस समै मुझे गोकुल

पहुँचा दो और इसी बिरियां जसोदा के लड़की हुई हैं सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारन कहता हूँ सो सुनो ।

नंद जसोदा तप करायी, मोही सों मन लाय ।

देख्यो चाहत बाल सुख, रहौ कछू दिन जाय ॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा तुम अपने मन में धीर धरो । ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी, तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया । यह समझ दस सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुँह देख देख दोनों लंबी साँसें भर भर आपस में लगे कहने—जो किसी रीत से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे । बसुदेव बोले—

विधना बिन राखै नहि कोई । कर्म लिखा सोई फल होई ॥

तब कर जोर देवकी कहै । नंद मित्र गोकुल में रहै ॥

पीर जसोदा हरै हमारी । नारि रोहनी तहाँ तिहारी ॥

इस बालक को वहाँ ले जाओ । यों सुन बसुदेव अकुलाकर कहने लगे कि इस कठिन बंधन से छूट कैसे ले जाऊँ । जों इतनी बात कही तों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ीं, चारों ओर के किवाड़ उघड़ गये, पहरेण अचेत नींद बस भये, तब तो बसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया ।

ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुंजरै ।

सोचत है बसुदेव, जमुना देखि प्रवाह अति ॥

नदी के तीर खड़े हो बसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है और आगे अथाह जमुना बह रही है, अब क्या करूँ । ऐसे कह भगवान का ध्यान धर जमुना में पड़े । जों जों आगे जाते थे तों तों नदी बढ़ती थी । जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराए । इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाय हुँकारा दिया । चरन छूते ही जमुना थाह हुई, बसुदेव पार हो नन्द की पीर पर जा पहुँचे । वहाँ किवाड़ खुले पाये, भीतर घसके देखें तो सब सोए पड़े हैं । देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि जसोदा को लड़की के होने की भी

सुध न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो जसोदा के ढिग सुला दिया, और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया। नदी उतर फिर आए तहाँ, बैठी सोचती थी देवकी जहाँ। कन्या दे वहाँ की कुशल कही, सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी, हमें कंस अब मार डाले तो भी कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आए तब किवाड़ जों के तों भिड़ गये और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहर लीं। कन्या रो उठी, रोने की धुन सुन पहरए जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान होति लगे तुपक छोड़ने। तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिघाड़ने, सिंह दहाड़ने औ कुत्ते भोंकने। तिसी सम अंधेरी रात के बीच बसरते में एक रखवाले ने आ हाथ जोड़ कंस से कहा—महाराज तुम्हारा बैरी उपजा। यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

—लल्लूलाल

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेत मुनि कहने लगे—

धर्मराज के लोक में भाँति भाँति के लोग और वृक्षों से शोभित चार सौ कोस लम्बी चौड़ी चार द्वार की यमराज की पुरी है, कि जिसमें सदा आप वे अनेक गण गंधर्व ऋषि वो योगियों के मध्य में धर्म का विचार किया करते हैं। तिस पुरी में जिस द्वार से जो प्राणी जाता है सो मैं तुमसे कहता हूँ।

देवता पितर गुरु के भक्त, क्रोध लोभ को जितनिहारे, दान धर्म में सब दिन जिनकी उत्तम मति रहती है, वो जो जेठ बैसाख में जल दे प्राणियों की प्यास मिटाते, वो जाड़े में वस्त्र दे दुखी जन को पालते हैं, ऐसे जितने लोग हैं सो तो वहाँ पूर्व द्वार

से जाते हैं, वो नाना भोग विलास करते। और हरि हर दुर्गा के भक्त, अतिथि देवताओं को पूजते, तीर्थों में नहाते, आहार को जीतते, गौ बचाने को युद्ध करते, ज्ञान के लिये साधुन का संग करते, ऐसे जो महात्मा लोग हैं सो सब उत्तर द्वार से जो परमपद को पहुँच मन भावन सुख को पाते हैं। और धर्म में जिनकी श्रद्धा है, सत्य ही बोलते, सबसे नय चलते, पराए की हिंसा निंदा नहीं करते, विष्णु के भक्त, परद्रव्य को मिट्टी, परस्त्री को माता समान जानते हैं, ऐसे जो कोई महापुरुष लोग हैं सो सब पश्चिम द्वार से वहाँ पहुँच विमानों पर चढ़ जहाँ इच्छा आवे तहाँ जा अपनी रुचि से आनंद विहार किया करते हैं। और जो निर्दयी, पापी, कुटिल, कठोर, क्रूर, विशाल, वेद पुराण शास्त्र व देव पितरों की निंदा करते हैं, वे गुरु को न मानते, झूठ ही बोलते रहते हैं, ऐसे जितने अधम लोग हैं सो तो महा भयावन दक्षिण द्वार से जाते हैं, और दुःख भोगने के लिये धर्मराज की आज्ञा से तुरंत काली काली बड़ी बड़ी देह पाय यमदूतों के हाथ पड़ मुँगरों के मार से भुरकुस होते, अति अंधकार महा महा रौरव नाम नरक में डाले जाते हैं, कि जिसमें जहाँ देखो तहाँ कीड़े कलबलाते हैं, और एक एक बाघ, सिंह, हुंडार, कुत्ते, बीछू, साँप, गिद्ध, कौए से भरे हैं कि पापियों को देखते ही सैकड़न आ झुक पड़ते हैं वो झट पकड़कर आपस में ऐंचा खँची किया करते रहते हैं, तिनमें दारुण दुःखदायक बिच्छू डंक मारने लगते हैं, बार बार विषधर डँसने को फुफकार करते, लोहे समान चोंचों से गिध कौए तिस पर ऐसे लगते हैं सताने कि जिस दुःख का कुछ पारावार नहीं है। हाय ! हाय ! मरे रे, दौड़ी रे, सदा पुकारते रहते हैं, पर बिना धर्म के कोई उनको बचाना चाहे तो नहीं बचा सकता है।

इस प्रकार से यमपुरी का दक्षिण द्वार अति डेरावन है कि जहाँ से दूतों के बस होकर पापी लोग ऐसे महा नरक में पड़ते वो नाना भौंति के दुःख को सहते हैं।

इससे अधिक कुंभीपाक आदि सहस्रन नरक एक से एक मैंने देखे कि जिनमें बड़े बड़े कीट भरे वो हाहाकार शब्द दूर ही से सुनाता है और वो महादुःखदायक असिपत्र एक एक ऐसा बन है कि जहाँ खड्ग की धार के समान चोखे गाछों के पत्ते हैं, नीचे तिसके अति दुर्गंध कीड़ों से आकुल पीप की नदी बहती है, वो अधमों के तलने के लिये बीच में कहीं कड़ाहों में तेल गरगराता रहता है। बहुतेरे तो पहाड़ पर से गिराए वो शूली पर चढ़ाए जाते हैं।

यह समाचार वैशंपायन राजा जन्मेजय से कहते हैं।

इस प्रकार से नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर, फिर जौन जौन कर्म किए से वह भोग होता है सो सब ऋषियों को सुनाने लगे, कि गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु, इनका जो वध करते हैं वो झूठ साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं, अपनी भाय्या को त्याग दूसरे की स्त्री को व्याहते, औरों की पीड़ा देख प्रसन्न होते हैं और जो धर्म से हीन पाप ही में गड़े रहते, वो माता पिता की हित बात को नहीं सुनते, सबसे बैर करते हैं, ऐसे जो पापी जन हैं सो सब महा डेरावना दक्षिण द्वार से जा नरकों में पड़ते हैं।

इतनी कथा सुना फिर नासिकेत मुनि कहने लगे, कि यम की आज्ञा से दूत सब एक किसी को इहाँ से ले गए वो विसे उनके आगे खड़ा कर दिया, उसका जो पुण्य पाप का विचार होते मन देखे है सो अब कहता हूँ तुम सावधान हो सुनो।

यमराज की सभा में अपने अपने स्थान पर सुंदर आसन बिछाए बैठे अत्रि, गौतम, मैत्रेय, बृहस्पति, शुक्र, वेदव्यास, जह्नु, कर्ण, भारद्वाज, दधीचि, गोभिल, दुर्वासा, मरीच, भृगु, गालव, सनत्कुमार, पुलह, पुलस्त्य, ऋतु, याज्ञवल्क, विश्वामित्र, मार्तंड, हरिमित्र व सुमित्र ये सब ऋषि लोग अच्छा अच्छा वस्त्र व भूषण पहिरे द्वादश आदित्य समान शोभते, नाना शास्त्र विचार विचार प्राणियों के धर्म अधर्म का न्याय किया करते हैं। तिनके बीच में कानों में कुंडल, शिर में सुंदर मुकुट पहिरे तारुह में चंद्रमा समान महातेजस्वी धर्मराज सदा विराजते रहते हैं।

तहाँ अति निर्दयी निपट डेरावना वैसे ही हाथ में दंड लिए दूतों ने उससे पूछा कि जिसको यहाँ से ले जा यम के पास खड़ा कर दिया था, कि कैसा पाप तुमने किया है सो धर्मराज के आगे सत्य बताओ।

इतने में बीच सभा में बैठे हुए प्रकट उचित कहनिहार ऋषि लोग शास्त्र विचार के बोल उठे कि महाराज ! इस पापी ने तो ब्राह्मण वध किया है, कुंभीपाक में कि जहाँ का दुख सहा नहीं जाता, अपने कर्म का जैसा कुछ फल है सो बहुत दिन तक भोगेगा।

यह सुनते ही वो यम की आज्ञा पाय किकरों ने झट उसे पकड़ लिया वो लाठियों से मारते पीटते घसीटते वहाँ ले चले और वोही नरक में, जहाँ कोई किसी को क्षण भर भी पीड़ा से बचा नहीं सकता है, डाल दिया वो तुरंत सहस्रन कीड़े बड़े बड़े मोटे मोटे देह में लिपट गए वो मांस काट काट खाने लगे ।

नासिकेत ऋषियों से कहते हैं इसी भाँति गोहत्या का भी निर्णय होते मैने देखा है, और जो अपराधी विश्वासघात, मारें लालच के नहीं खाने को, सो हैं खाते, ऐसे जितने अधम लोग हैं सो तो कड़ाहों में कि जिनमें तेल गरम हो रहा है, डाले वो शूली पर चढ़ाए जाते हैं । इस प्रकार बहुतेरन्ह शीकरो (सिक्कड़ों) से बाँध बाँध दूत सब यम के निकट पहुँचावते हैं कि जहाँ तेज में सूर्य समान चित्रगुप्त प्राणियों के पुण्य पाप को लिख ले जा समझते हैं, ऋषि लोग शास्त्र विचार जैसा जिसको उचित है वैसा न्याय बतावते हैं, ऐसी धर्मराज की सभा और वहाँ का सब वृत्तांत है और जिस जिस कर्म से हम नरकों में पड़ते हैं सो भी सुनो मैं कहता हूँ ।

जो नर चोरी आदि नाना भाँति के कुकर्म में आप तो दिन रात लगे हैं, तिसपर भी औरों को देखते हैं, वो एक अधर भी जिससे पड़ते विसे गुरु के बराबर नहीं मानते हैं, सो तब तक महानरक को देखते हैं, कि जब तक यह संसार बना रहता है, और जो दुष्ट गुरु को वाद कर हराते व डाटते हैं, पिता, माता, गुरु से व्यर्थ बैर करते हैं, वे सब विसी नरक में पड़ते हैं, कि जहाँ ब्राह्मण के वध करनेवाले जाते हैं । इसलिये माता पिता गुरु को कदहीं कोप न करावेंगे कि जिससे ऐसे संकट को भोगेंगे । और जो कास पीतल तामा लोहा चुराते हैं, कन्यादान समय में भाँजी मारते हैं, मुनि ब्रह्मचारियों की तपस्या में बाधा करते हैं, और जो निर्दयी क्या घर में क्या बन में, क्या कहीं आग लगा सहस्रन जीव को जला देते हैं, सो सब असिपत्र बन में डाले व लाल अँगारों पर घसीटे जाते हैं, व हाहाकार शब्द किया करते हैं ।

और जो बालक, वृद्ध, स्त्री, साधु, संत को छलते हैं, नहीं करने को सो करते, और जो मनुष्य अच्छे अच्छे मीठी मीठी वस्तु बना छिपकर अकेले ही आप चट करते हैं, सो विस कूप में पड़ते हैं कि जो बिष्टा वो कीड़ों से भरा हुआ है ।

जो नर बहुत दिन तक भोग वा प्राण से भी अधिक मान किन्तु अपराध से

पतिव्रता स्त्री को त्याग देते हैं सो सब भी असिपत्र वन नाम नरक में डाले जाते हैं वो नाना भोंति की पीड़ा को सहते हैं।

इससे अधिक और भी नरक मैंने देखे कि जहाँ महाडेरावन आग लहर रही है। अपने कर्मों से पापी लोग बार बार जलाए जाते हैं, बहुतेरे शीकरो से बाँधे हुए मुँगरों के मार से नीचे गिर विलाप कर बेड़ी सहित उठ भागते हैं, तिस पर निर्दयी यम के दूत सब तुरंत उसे पकड़ लोहे के धनों पर पटकते हैं, कितने एक को तो गलों में फाँसी लगा, किसीको दोनों पाँव ही धर घसीटते वो डाँट कर कहते हैं कि हा मूर्खों ! बहुत सबसे बँर विसाहे हो, क्यों अब रोते हो। अपना कमाया हुआ दुख भोगो।

जो नर किसी को खाने पीने में बाधा करते हैं सो सब भी विसी नरक में रहते हैं कि जिसका दारुण दुःख सहा नहीं जाता है। और जो नारी स्वामी को निंदती वो नित्य कलह करती है सो वहाँ डाली जाती है कि जहाँ बड़े बड़े सीमर के अंगारे ऐसे लहर रहे हैं। पति के मरे पर औरों से मिलती है यम के दूत सब विस की जीभ को काट लेते वो अष्टधातु की प्रतिमा को पकड़ाते हैं।

और जो पतिव्रता स्त्री की निंदा करते हैं सो सब नरकों में फिर नाना पीड़ा ऐसे भोगते हैं कि किसी प्रकार से किसीको उससे बचाव होने का नहीं।

—(अनुवादक) सदल मिश्र

समर्पण

आज अक्षय तृतीया है, देखो जल-दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे ? कहाँ ! वरंच जलांजलि दोगे ; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानि हूँ। हाँ ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियों तथा अनेक उत्तम मीठे-

मीठे सोते, झील, कूप, कुंड, बावली और झरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्राण बचे ? देखो यह कैसी अनीति है, वही आनन्दघन जी का कहना 'सब छोड़ि अहो हम पायो तुम्हें हमें छोड़ि कहो तुम पायो कहा ।' यह देखो कैसे संशय की बात है कि मैं तो दोनों लोक के यावत् पदार्थ छोड़ बैठा, उस पर भी आप न पिघले तो इससे तुम्हारे ही विषय में संशय होते हैं जो चित्त के धैर्यों को हिलाते हैं । पर चाहे तुम कुछ कहो, मैं तो व्रत नहीं छोड़ने का । यह बड़ा हठ कौन मिटा सकता है ? जो कहो कि 'तुम कच्चे हो, घर बैठे ही यह सम्पत् लूटा चाहते हो और संसार की वासनाओं से दूषित होकर भी हमें खोजते हो' तो हम कैसे भी हों, तुम तो अच्छे हो और हम कहाते तो तुम्हारे हैं, तो फिर तुमको इससे क्या ? भले आदमी ही बनो 'सतां सप्तपदी मैत्री' इसी का निवाह करो, किसी भाँति समझो । ए मेरे प्यारे, कुछ तो मानो । जो कहो धर्म, तो तुम फल रूप हो । अब धर्म फिर कैसा ? जो कहो कलंक, तो प्रथम तुमको कलंक ही नहीं, और जो होता भी हो तो हम तुमको ठिठोरा पीटने तो कहते नहीं । केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दो कि निराश न हो और इन अनिवार्य अश्रुओं को अपने अंचल से निवारण करो और भव-ताप से परम तापित इस दीन-हीन दुखी को अपने चरण-कल्पतरु की छाया में विश्राम दो, क्योंकि वैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य है । जो कहो कि वैशाख बड़ा पुण्य मास है, इसमें तुमने क्या किया ? तो मैंने देखो यह कैसा उत्तम तीर्थ प्रेम-सरोवर बनाया है । जो इस तीर्थ में स्नान करेंगे, जो इस तीर्थ की विधि करेंगे, जो इस तीर्थ का ध्यान धरेंगे, वे आप पुण्य-स्वरूप पावन होकर अपने शरीर के स्पर्श के वायु से तथा हवा से लोक को पवित्र करेंगे, क्योंकि सत्य प्रेम ऐसी ही वस्तु है । तो क्या इस सीतल सरोवर में तुम न नहाओगे ? अवश्य नहाना होगा, आप नहाओ और अपने जनों को कहो कि इसमें स्नान करें । प्यारे, यह अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और इसमें नित्य नए कमल फूलेंगे और कभी इसमें कोई मल न आवेगा और इस पर प्रेमियों की भीड़ नित्य लगी रहेगी और प्रेम शब्द को विषय का पूजादिक कहनेवाले वा प्रेमाधिकारी के अतिरिक्त कोई भी इस तीर्थ पर कभी न आवे (एवमस्तु—एवमस्तु) । तो तुम तो स्नान करो कि मेरा परिश्रम सार्थक हो और इसका तीर्थपना पक्का हो जाय, क्योंकि



तुम्हारे वा हमारे वा तुम्हारे किसी सेवक के नहाने से जल मात्र गंगा हो जाते हैं।
तो आओ, इधर आओ, इस उत्तम तीर्थ का मार्ग दिखानेवाला तुम्हारे आगे चलता
है, जिसका नाम—

अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल ३

सं० १९३० मंगल

केवल तुम्हारा

* * * * *

—भारतेन्दु

आंसू

मनुष्य के शरीर में आंसू भी गड़े हुए खजाने के माफ़िक हैं। जैसे कभी कोई नाजुक वस्तु आपड़ने पर संचित पूँजी ही काम देती है, उसी तरह हर्ष, शोक, भय, प्रेम इत्यादि भावों को प्रकट करने में जब सब इंद्रियां स्थगित होकर हार मान बैठती हैं, तब आंसू ही उन भावों को प्रकट करने में सहायक होते हैं। चिरकाल के वियोग के उपरान्त जब किसी दिली दोस्त से मुलाकात होती है, तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफान में अंग-अंग ढीले पड़ जाते हैं : वाष्प-गद्गद कंठ रुंध जाता है ; जिह्वा इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उससे मिलन की खुशी को प्रकट करने के लिये एक-एक शब्द मनो बोल-सा मालूम पड़ता है। पहले इसके कि शब्दों से वह अपना असीम आनंद प्रकट करे, सहसा आंसू की नदी उसकी आंख में उमड़ आती है, और नेत्र के पवित्र जल से वह अपने प्राणप्रिय को नहलाता हुआ उसे बगलगीर करने को हाथ फैलाता है। सच्चे भक्त और उपासक की कसौटी भी इसी से हो सकती है। अपने उपास्य देव के नाम-संकीर्तन में जिसे अश्रुपात न हुआ, मूर्ति का दर्शन कर प्रेमाश्रुपात से जिसने उसके चरणकमलों का अभिषेक न किया, उस दाम्भिक को भक्ति के आभासमात्र से क्या फल ? सरस कोमल चित्तवाले अपने मनोगत सुख-दुःख के भाव को छिपाने की हजार-हजार चेष्टा करते

है कि दूसरा कोई इनके चित्त की गहराई को न थहा सके ; पर अश्रुपात भाव-गोपन की सब चेष्टा को व्यर्थ कर देता है। मोती-सी आंसू की बूंदें जिस समय सहसा नेत्र से झरने लगती हैं, उस समय उन्हें रोक लेना बड़े-बड़े गंभीर प्रकृतिवालों की भी शक्ति के बाहर होजाता है।

यदि सृष्टिकर्ता अत्यंत शोक में अश्रुपात को प्राकृतिक न कर देता, तो वज्रपात-सम दारुण दुःख के वेग को कौन संभाल सकता ? इसी भावार्थ को भवभूति ने यों कहा है कि जैसे—बरसात में तालाब जब लबालब भर जाता है, तो बांध तोड़ कर उसका पानी बाहर निकाल देना ही सुगम उपाय बचाव का होता है। इसी तरह अत्यन्त शोक से क्षोभित तथा व्याकुल मनुष्य का अश्रुपात ही हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेने का उपाय है। बल्कि ऐसे समय रोना ही राहत है।

कोई शूरवीर, जिसको रणचर्चा-मात्र सुन जोश आ जाता है और जो लड़ाई में गोली तथा बाण की वर्षा को फूल की वर्षा मानता है, वीरता की उमंग में भरा हुआ युद्ध-यात्रा के लिये प्रस्थान करने को तैयार है। विदाई के समय विलाप करते हुए अपने कुनबेवालों के आंसू के एक-एक बूंद की कथा कीमत है, यह वही जान सकता है। वह शशोपंज में पड़ आगे को पांव रख फिर हटा लेता है। वीर और करुणा ये दो विरोधी रस अपनी-अपनी ओर से उमड़-उमड़ देर तक उसे किकर्तव्यतामूढ़ किए रहते हैं। आंख में आंसू उन्हीं अकुटिल सीधे सत्पुरुषों के आते हैं, जिनके सच्चे सरल चित्त में कपट और कुटिलाई ने स्थान नहीं पाया है। निठुर, निर्दयी, मक्कार की आंखें, जिसके कट्टर कलेजे ने कभी पिघलना जाना ही नहीं, दुनिया के दुःख पर क्यों पसीजेंगी ? प्रकृति ने चित्त का आंख के साथ कुछ ऐसा सीधा सम्बन्ध रख दिया है कि आंखें चित्त की वृत्तियों को चट पहचान लेती हैं और तत्काल तदाकार अपने को प्रकट करने में देर नहीं करतीं, तो निश्चय हुआ कि जो ब्रेकलेजे हैं, उनकी बैल-सी बड़ी-बड़ी आंखें केवल देखने ही को हैं, चित्त की वृत्तियों का उन पर कभी असर होता ही नहीं। चित्त के साथ आंख के सीधे सम्बन्ध को विहारी कवि ने कई दोहों में प्रकट किया है। यथा—

“कोटि जतन कीजै तऊ, नागरि नेह दुरै न ;
कहे देत चित चीकनो, नई रुखाई नैन ॥”

दहें निगोड़े नैन ये, गहें न चेत-अचेत ;

हौं कसि कै रिस को करौं, ये निरखत हंसि देत ॥”

मृतक के लिये लोग हजारों-लाखों खर्चकर आलीशान रौजे, मकबरे, कब्रें संगमरमर या संगमूसा की बनवा देते हैं ; कीमती पत्थर, मानिक, जमुर्द से उन्हें आरास्ता करते हैं ; पर वे मकबरे क्या उसकी रूह को उतनी राहत पहुंचा सकते हैं, जितनी उसके दोस्त आंसू के कतरे टपकाकर पहुंचाते हैं ?

आंसू आंसू में भी भेद हैं। कितनों का पनीला कपार होता है, बात कहते रो देते हैं। अक्षर उनके मुख से पीछे निकलेगा, आंसुओं की झड़ी पहले ही शुरू हो जायगी। स्त्रियों के जो बहुत आंसू निकलते हैं, मानो रोना उनके पास गिरो रहता है, इसका कारण यही है कि वे नाम ही की अबला और अधीर हैं। दुःख के वेग में आंसू को रोकनेवाला केवल धीरज है। उसका टोटा यहां हरदम रहता है। तब इनके आंसू का क्या ठिकाना ! स्वत्वशाली धीरजवालों को आंसू कभी आते ही नहीं। कड़ी-से-कड़ी मुसीबत में दो-चार कतरे आंसू के मानो बड़ी बरकत हैं। बहुत मौकों पर आंसू ने गजब कर दिया है। सिकंदर का कौल था कि मेरी माँ की आंख के एक कतरा आंसू की कीमत मैं बादशाहत से भी बढ़कर मानता हूँ। रेणुका के अश्रुपात ही ने परशुराम से एककीस बार क्षत्रियों का संहार कराया था।

कितने ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें आंसू नहीं आते। इसलिये जहां पर बड़ी जरूरत आंसू गिराने की हो, तो उनके लिये प्याज का गट्टा पास रखना बड़ी सहज तरकीब है। प्याज ज़रा-सा आंख में छू जाने से आंसू गिरने लगते हैं।

“किसी को बैंगन बावले, किसी को बैंगन पत्थ।”

बहुधा आंसू का गिरना भलाई और तारीफ़ में दाखिल है। हमारे लिये आंसू बड़ी बला है। नज़ले का जोर है, दिन-रात आंखों से आंसू टपकते हैं। ज्यों-ज्यों आंसू गिरते हैं, त्यों-त्यों बीनाई कम होती जाती है। सैकड़ों तदबीरें कर चुके, आंसू का टपकना बन्द न हुआ। क्या जाने, बंगाल की खाड़ीवाला समुद्र हमारे ही कपार में आकर भर रहा है ? आंख से तो आंसू चला ही करते

हैं। आज हमने लेख में भी आंसू ही पर कलम चला दी। पढ़नेवाले इसे निरी नहूसत की अलामत न मान हमें क्षमा करेंगे।

—पंडित बालकृष्ण भट्ट

राजा भोज का सपना

वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा महाराज भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही कांप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पांव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चांदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न सोता और न कोई उधाड़ा रहने पाता। जो सत्तू मांगने आता उसे मोतीचूर मिलता और जो गजी चाहता उसे मलमल दिया जाता। पैसे की जगह लोगों को अर्शफियां बांटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिये ब्राह्मणों को लाख लाख रुपया उठा देता और एक एक दिन में लाख लाख गौ दान करता सवा लाख ब्राह्मणों को षट्स भोजन कराके तब आप खाने को बैठता। तीर्थयात्रा, स्नान, दान और व्रत उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चांद्रायण किए थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद् ऋतु में संध्या के समय सुंदर फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुंड के तीर, जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जल-पक्षी कलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिए के सहारे स्वस्थ चित्त बैठा हुआ वह महलों की—सुनहरी कलसियां लगी हुई—संगमर्मर की गुमजियों के पीछे से उदय होता

हुआ पूर्णिमा का चंद्रमा देख रहा था और निर्जन एकांत होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि “अहो ! मैंने अपने कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है । क्या मनुष्य और क्या जीव-जंतु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गंवाया और व्रत उपवास करते करते फूल से शरीर को कांटा बनाया । जितना मैंने दान दिया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा । जो मैं ही नहीं तो फिर और कौन हो सकता है ? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा । ऐसा कब हो सकता है कि मुझे भी कुछ दोष लगे ?”

इसी असें में चौबदार ने पुकारा—“चौधरी इंद्रदत्त निगाह खूब !” श्रीमहाराज सलामत भोज ने आंख उठाई, दीवान ने साष्टांग दंडवत की, फिर सम्मुख जा हाथ जोड़ यों निवेदन किया—“पृथ्वीनाथ, सड़क पर वे कुएं जिनके वास्ते आपने हुक्म दिया था बनकर तैयार हो गए हैं और आम के बाग भी सब जगह लग गए । जो पानी पीता है आपको असीस देता है और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता आपकी बढ़ती दौलत मनाता है ।” राजा अति प्रसन्न हुआ और बोला कि “सुन मेरी अमलदारी भर में जहां जहां सड़कें हैं कोस कोस पर कुएं खोदवा के सदावर्त बैठा दे और दुतरफा पेड़ भी जल्द लगवा दे ।” इसी असें में दानाध्यक्ष ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया—“धर्मावतार ! वह जो पांच हजार ब्राह्मण हर साल जाड़े में रजाई पाते हैं सो डेवड़ी पर हाजिर हैं ।” राजा ने कहा—“अब पांच के बदले पचास हजार को मिला करे और रजाई की जगह शाल दुशाले दिए जावें ।” दानाध्यक्ष दुशालों के लाने वास्ते तोशेखाने में गया । इमारत के दरोगा ने आकर मुजरा किया और खबर दी कि “महाराज ! उस बड़े मंदिर की जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है आज नींव खुद गई, पत्थर गढ़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं ।” महाराज ने तिउरियां बदलकर उस दारोगा को खूब घुड़का “अरे मूर्ख, वहां पत्थर और लोहे का क्या काम है ? बिल्कुल मंदिर संगममेर और संगमूसा से बनाया जावे और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में आवे जिसमें भगवान् भी उसे देखकर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्ति पावे ।”

यह सुनकर सारा दरबार पुकार उठा कि "धन्य महाराज ! क्यों न हो ? जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो। आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानों धर्म का उद्धार करने को इस जगत् में अवतार लिया। आज आपसे बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है, हमने तो पहले ही से आपको साक्षात् धर्मराज विचार है।" व्यासजी ने कथा आरंभ की, भजन-कीर्तन होने लगा। चांद सिर पर चढ़ आया। घड़ियाली ने निवेदन किया कि "महाराज ! रात आधी के निकट है।" राजा की आंखों में नींद छा रही थी ; व्यास कथा कहते थे पर राजा को ऊंध आती थी। वह उठकर रनवास में गया।

जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया। रानियां पैर दाबने लगीं। राजा की आंख झपक गई तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमर्मर का मंदिर बनकर बिल्कुल तैयार हो गया, जहां कहीं उस पर नक्काशी का काम किया है वहां उसने बारीकी और सफाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है, जहां कहीं पच्चीकारी का हुनर दिखलाया है वहां जवाहिरों को पत्थरों में जड़कर तसवीर का नमूना बना दिया है। कहीं लालों के गुल्लालों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और ओस की जगह हीरों के लोलक लटकाए हैं, कहीं पुखराजों की डंडियों से पत्ते के पत्ते निकालकर मोतियों के भुट्टे लगाए हैं। सोने को चोबों पर शामियाने और उनके नीचे बिल्लौर के हीजों में गुलाब और केवड़े के फुहारे छूट रहे हैं। मनो धूप जल रहा है, सैकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा देखते ही मारे धमंड के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी दाहने कभी बाएं निगाह करता और मन में सोचता कि अब इतने पर भी मुझे क्या कोई स्वर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुण्यात्मा न कहेगा ? मुझे अपने कर्मों का भरोसा है ; दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा।

इसी असें में वह राजा उस सपने के मंदिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक जोत सी उसके सामने आसमान से उतरी चली आती है। उसका प्रकाश तो हजारों सूर्य से भी अधिक है, परंतु जैसे सूरज को बादल घेर लेता है इस प्रकार उसने मुंह पर घूँघट सा डाल लिया है, नहीं तो राजा की आंखें कब उस पर ठहर सकती थीं वरन् इस घूँघट पर भी वे मारे चकाचौंध के झपकी चली जाती थीं। राजा

उसे देखते ही कांप उठा और लड़खड़ाती सी जबान से बोला कि हे महाराज ! आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आए हैं ? उस दैवी पुरुष ने बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि मैं सत्य हूं, अंधों की आंखें खोलता हूं, मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूं, मैं मृगतृष्णा के भटके हुआओं का भ्रम मिटाता हूं और सपने के भूले हुआओं को नींद से जगाता हूं। हे भोज ! अगर कुछ हिम्मत रखता हूँ तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मंदिरों का भेद ले, इस समय हम तेरे ही मन को जांच रहे हैं। राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छा गई। नीची निगाह करके वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, भोज ! तू डरता है, तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है ? भोज ने कहा—नहीं, इस बात से तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तई नहीं जाना उसने फिर क्या जाना ? सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जांचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर कांटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूं। सत्य बोला, “ठीक, पर भोज, यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है ? क्या हवा में बिना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं ? पर सूर्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं ? क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं ? पर जब खुर्दबीन शीशे को लगाकर देखो तो एक एक बूंद में हजारों ही जीव सूझने लग जाते हैं। बस तू उस बात के जानने से जिसे अवश्य जानना चाहिए डरता नहीं तो आ मेरे साथ आ, मैं तेरी आंखें खोलूंगा।”

निदान सत्य यह कह राजा को उस बड़े मंदिर के ऊंचे दर्वाजे पर चढ़ा ले गया जहां से सारा वाग दिखलाई देता था और फिर वह उससे यों कहने लगा कि भोज, मैं अभी तेरे पापकर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता, क्योंकि तूने अपने तई निरा निष्पाप समझ रखा है, पर यह तो बतला कि तूने पुण्य-कर्म कौन कौन से किए हैं कि जिनसे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर संतुष्ट होगा। राजा यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य-कर्म के नाम से



उसके चित्त को कमल सा खिला दिया। उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया हो, पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा। राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे अपनी आंख के सामने दिखाई दिए। फलों से वे इतने लदे हुए थे कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि सत्य, यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देख फलों के बोझ से ये धरती पर नए हैं। ये तीनों मेरे ही लगाए हैं। पहले मैं तो वे सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वे पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं। मानों उस समय यह ध्वनि चारों ओर से राजा के कानों में चली आती थी कि धन्य हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आंखों में निर्दोष और निष्पाप हो। सूर्य के मंडल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।

सत्य बोला कि “भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतलाता है तब तो इनमें फल-फूल कुछ भी नहीं थे, ये निरे ठूठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहां से आ गए ? ये सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और वश करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेड़ों के पास चलकर देखें तो सही। मेरी समझ में तो ये लाल लाल फल जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है वश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं।” निदान ज्योंही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया, राजा सपने में क्या देखता है कि वे सारे फल जैसे आस्मान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई ; पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा। सत्य ने कहा कि “राजा, जैसे कोई किसी चीज को मोम से चिपकाता है उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा की इच्छा से ये फल इस पेड़ पर लगा लिए थे। सत्य के तेज से यह मोम गल गया, पेड़ ठूठ का ठूठ रह गया। जो तूने दिया और किया

सब दुनिया के दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये, केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तूही क्यों नहीं बतलाता। मूर्ख, इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था।”

भोज ने एक ठंडी सांस ली। उसने तो औरों को भूला समझा था पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़ की तरफ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए पीले पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य बोला, “राजा ये फल तूने अपने भुलाने को, स्वर्ग की स्वार्थसिद्धि करने की इच्छा से लगा लिए थे। कहनेवाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है। तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है। यदि न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्योंकर रह सके। जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बे-नींव का घर है, बुढ़िया के दांतों की तरह हिलता है, अब गिरा तब गिरा। मूर्ख, तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थ सिद्ध करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से?”

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आंखें नीची कर लीं, उससे जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की बारी आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यंत लज्जित हुआ। सत्य ने कहा कि “मूर्ख! ये तेरे तप के फल कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रखा था। वह कौन सा व्रत व तीर्थयात्रा है जो तू ने निरहंकार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप केवल इसी वास्ते किया कि जिसमें तू अपने तई औरों से अच्छा और बढ़कर बिचारे। ऐसे ही तप पर गोबरगनेस, तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद रखता है? पर यह तो बतला कि मंदिर की उन मुंडेरों पर वे जानवर से क्या दिखलाई देते हैं; कैसे सुंदर और प्यारे मालूम होते हैं। पर तो उनके पन्ने के हैं और गर्दन फिरोजे की, दुम में सारे किस्म के जवाहिरात जड़ दिए हैं।” राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली, मानों बुझते हुए दीये की तरह वह जगमगा उठा। जल्दी से उसने जवाब

दिया कि “हे सत्य, यह जो कुछ तू मंदिर की मुंडेरों पर देखता है मेरे संध्यावंदन का प्रभाव है। मैंने जो रातों जाग जागकर और माथा रगड़ते रगड़ते इस मंदिर की देहली को घिसकर ईश्वर की स्तुति वंदना और विनती प्रार्थना की है वे ही अब चिड़ियों की तरह पंख फैलाकर आकाश को जाती हैं, मानों ईश्वर के सामने पहुंचकर अब मुझे स्वर्ग का राजा बनाती हैं।” सत्य ने कहा कि राजा, दीनबंधु करुणासागर श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है और जो मनुष्य शुद्धहृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्मों का पश्चात्ताप अथवा उनके क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम सूर्य चांद को बेधकर पार हो जाता है, फिर क्या कारण कि ये सब अब तक मंदिर के मुंडेरे पर बैठ रहे? आ चल, देखें तो सही हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकटे कबूतरों की तरह फड़फड़ाया करते हैं।

भोज डरा लेकिन उसने सत्य का साथ न छोड़ा। जब वह मुंडेरे पर पहुंचा तो क्या देखता है कि वे सारे जानवर जो दूर से ऐसे सुंदर दिखलाई देते थे मरे हुए पड़े हैं; पंख नुचे खुचे और बहुतेरे विलकुल सड़े हुए, यहां तक कि मारे बदबू के राजा का सिर भिन्ना उठा। दो एक ने, जिनमें कुछ दम बाकी था, जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उसने उन्हें उसी ठौर दबा रखा। वे तड़पा जरूर किए, पर उड़ जरा भी न सके। सत्य बोला “भोज, बस यही तेरे पुण्यकर्म हैं, इसी स्तुति वंदना और विनती प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाया चाहता है। सूरत तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान विलकुल नहीं। तूने जो कुछ किया केवल लोगों के दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता कि ‘दीनबंधु दीनानाथ दीनहितकारी! मुझ पापी महा अपराधी डूबते हुए को बचा और कृपादृष्टि कर’ तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों से पार पहुंची होती।” राजा ने सिर नीचा कर लिया, उससे उत्तर कुछ न बन आया। सत्य ने कहा कि “भोज! अब आ, फिर इस मंदिर के अंदर चलें और वहां तेरे मन के मंदिर को जांचें। यद्यपि मनुष्य के मन के मंदिर में ऐसे ऐसे अंधेरे तहखाने और तलघरे पड़े हुए हैं कि उनको सिवाय सर्वदर्शी घट घट अंतर्दामी सकल जगत्स्वामी के और

कोई भी नहीं देख अथवा जांच सकता, तो भी तेरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा।”

राजा सत्य के पीछे खिंचा खिंचा फिर मंदिर के अंदर घुसा, पर अब तो उसका हाल ही कुछ से कुछ हो गया। सचमुच सपने का खेल सा दिखलाई दिया। चांदी की सारी चमक जाती रही, सोने की बिलकुल दमक उड़ गई, सोने में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ, जहां जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ईंट-पत्थर कैसा बुरा दिखलाई देता था। जवाहिरों की जगह केवल काले काले दाग रह गए थे, और संगमर्मर की चट्टानों में हाथ हाथ भर गहरे गढ़े पड़ गए थे। राजा यह देखकर भेंचक सा रह गया, औसान जाते रहे, हक्काबक्का बन गया। उसने धीमी आवाज से पूछा कि ये टिट्टीदल की तरह इतने दाग इस मंदिर में कहां से आए? जिधर में निगाह उठाता हूं सिवाय काले काले दागों के और कुछ भी नहीं दिखलाई देता। ऐसा तो छीपी छींट भी नहीं छापेगा और न शीतला से बिगड़ा किसी का चेहरा ही देख पड़ेगा। सत्य बोला कि “राजा ये दाग जो तुझे इस मंदिर में दिखलाई देते हैं दुर्वचन हैं जो दिन-रात तेरे मुख से निकला किए हैं। याद तो कर, तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कड़ी बातें लोगों को सुनाई हैं। क्या खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित्त प्रसन्न करने को, क्या रुपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को और दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबरवाले से अपना मतलब निकालने और दुश्मनों को नीचा दिखलाने को तूने कितना झूठ बोला है। अपने ऐब छिपाने और दूसरे की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा झूठी तारीफ पाने के लिये तूने कैसी कैसी शेखियां हांकी हैं और अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनाई हैं सो क्या अब कुछ भी याद न रहा, बिलकुल एकबारगी भूल गया? पर वहां तो वे तेरे मुंह से निकलते ही वही में दर्ज हुई। तू इन दागों के गिनने में असमर्थ है पर उस घट-घट-निवासी अनंत-अविनाशी को एक एक बात जो तेरे मुंह से निकली है याद है और याद रहेगी। उसके निकट भूत और भविष्य वर्तमान सा है।”

भोज ने सिर न उठाया पर उसी दबी जबान से इतना मुंह से और निकाला कि दाग तो दाग पर ये हाथ हाथ भर के गढ़े क्योंकर पड़ गए, सोने चांदी में मोर्चा लगकर ये ईंट पत्थर कहां से दिखलाई देने लगे? सत्य ने कहा कि “राजा क्या

तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही अथवा बोली ठोली नहीं मारी ? अरे नादान, यह बोली ठोली तो गोली से अधिक काम कर जाती है, तू तो इन गढ़ों ही को देखकर रोता है पर तेरे ताने तो बहुतों की छातियों से पार हो गए । जब अहंकार का मोर्चा लगा तो फिर यह देखलावे का मूलम्मा कब तक ठहर सकता है ! स्वार्थ और अश्रद्धा का ईंट-पत्थर प्रकट हो गया ।” राजा को इस असें में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रखा था । मारे बू के सिर फटा जाता था । भुनगों और पतंगों से सारा मकान भर गया था, बीच बीच में पंखवाले साँप और बिच्छू भी दिखलाई देते थे । राजा घबराकर चिल्ला उठा कि यह मैं किस आफत में पड़ा, इन कमबख्तों को यहां किसने आने दिया ? सत्य बोला “राजा सिवाय तेरे इनको यहां और कौन आने देगा ? तू ही तो इन सबको लाया । ये सब तेरे मन की बुरी वासनाएं हैं । तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौजें उठकर मिट जाती हैं । पर रे मूढ़ ! याद रख, कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच-विचार कोई नहीं आता जो जगकर्त्ता प्राणदाता परमेश्वर के सामने प्रत्यक्ष नहीं हो जाता । ये चिमगादड़ और भुनगे और साँप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलाई देते हैं वे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अभिमान, मद, ईर्ष्या के संकल्प-विकल्प हैं जो दिनरात तेरे अंतःकरण में उठा किए और इन्हीं चिमगादड़ और भुनगों और साँप बिच्छू और कीड़े मकोड़ों की तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते रहे । क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की ओर से कुछ द्वेष नहीं रहा या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया या अपनी बड़ाई का अभिमान नहीं हुआ या दूसरे की सुंदर स्त्री देखकर उस पर दिल न चला ?”

राजा ने एक बड़ी लंबी ठंडी सांस ली और अत्यंत निराश होके यह बात कही कि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं । इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा ही कठिन है । जो पुण्य करना चाहते हैं उनमें भी पाप निकल आता है । इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं, ईश्वर के सामने पवित्र पुण्यात्मा कोई भी नहीं । सारा मंदिर वरन् सारी धरती, आकाश गूँज उठा “कोई भी नहीं, कोई भी नहीं ।” सत्य ने जो आंख उठाकर उस मंदिर की एक दीवार की ओर देखा तो उसी दम संगमर्मर

से आईना बन गया। उसने राजा से कहा कि अब टुक इस आईने का भी तमाशा देख और जो कर्तव्य कर्मों के न करने से तुझे पाप लगे हैं उनका भी हिसाब ले। राजा उस आईने में क्या देखता है कि जिस प्रकार बरसात की बड़ी हुई किसी नदी में जल के प्रवाह बहे जाते हैं उसी प्रकार अनगिनत सूरतें एक ओर से निकलती और दूसरी ओर अलोप होती चली जाती हैं। कभी तो राजा को वे सब भूखे और नंगे इस आईने में दिखलाई देते जिन्हें राजा खाने पहनने को दे सकता था पर न देकर दान का रुपया उन्हीं हट्टे कट्टे मोटे मुसंड खाते पीतों को देता रहा, जो उसकी खुशामद करते थे या किसी की सिफारिश ले आते थे या उसके कारदारों को घूस देकर मिला लेते थे या सवारी के समय मांगते मांगते और शोर गुल मचाते मचाते उसे तंग कर डालते थे या दरबार में आकर उसे लज्जा के भंवर में गिरा देते थे या झूठा छाप तिलक लगाकर उसे मक्क के जाल में फंसा लेते थे या जन्मपत्र के भले बुरे ग्रह बतलाकर कुछ धमकी भी दिखला देते थे या सुंदर कवित्त और श्लोक पढ़कर उसके चित्त को लुभाते थे। कभी वे दीन दुखी दिखलाई देते जिन पर राजा के कारदार जुल्म किया करते थे और उसने कुछ भी उसकी तहक्रीकात और उपाय न किया। कभी उन बीमारों को देखता जिनका चंगा करा देना राजा के अख्तियार में था, कभी वे व्यथा के जले और विपत्ति के मारे दिखलाई देते जिनका जी राजा के दो बात कहने से ठंडा और संतुष्ट हो सकता था। कभी अपने लड़के लड़कियों को देखता था जिन्हें वह पढ़ा लिखाकर अच्छी अच्छी बातें सिखाकर बड़े बड़े पापों से बचा सकता था। कभी उन गांव और इलाकों को देखता जिनमें कुएं तालाब और किसानों को मदद देने और उन्हें खेती बारी की नई नई तरकीबें बतलाने से हजारों गरीबों का भला कर सकता था। कभी उन टूटे हुए पुल और रास्तों को देखता जिन्हें दुरुस्त करने से वह लाखों मुसाफिरों को आराम पहुंचा सकता था।

राजा से अधिक देखा न जा सका, थोड़ी देर में घबराकर हाथों से उसने अपनी आंखें ढांप ली। वह अपने घमंड में उन सब कामों को तो सदा याद रखता था और उनकी चर्चा किया करता जिन्हें वह अपनी समझ में पुण्य के निमित्त किए हुए समझता था, पर उसने उन कर्तव्य कामों का कभी टुक सोच न किया जिन्हें अपनी उन्मत्तता से अचेत होकर छोड़ दिया था। सत्य बोला “राजा अभी से

क्यों घबरा गया ? आ इधर आ, इस दूसरे आईने में तुझे अब उन पापों को दिखलाता हूँ जो तूने अपनी उमर में किए हैं।” राजा ने हाथ जोड़ा और पुकारा कि “बस महाराज, बस कीजिए, जो कुछ देखा उसी में मैं तो मिट्टी हो गया, कुछ भी बाकी न रहा, अब आगे क्षमा कीजिए। पर यह बतलाइए कि आपने यहां आकर मेरे शर्वत में क्यों जहर घोला और पकी पकाई खीर में सांप का विष उगला और मेरे आनंद को इस मंदिर में आकर नाश में मिलाया जिसे मैंने सर्वशक्तिमान् भगवान् को अर्पण किया है ? चाहे जैसा यह बुरा और अशुद्ध क्यों न हो पर मैंने तो उसी के निमित्त बनाया है।” सत्य ने कहा “ठीक, पर यह तो बतला कि भगवान् इस मंदिर में बैठा है ? यदि तूने भगवान् को इस मंदिर में बिठाया होता तो फिर वह अशुद्ध क्यों रहता ! ज़रा आंख उठाकर उस मूर्ति को तो देख जिसे तू जन्म भर पूजता रहा है।”

राजा ने जो आंख उठाई तो क्या देखता है कि वहां उस बड़ी ऊंची वेदी पर उसी की मूर्ति पत्थर की गढ़ी हुई रखी है और अभिमान की पगड़ी बांधे हुए है। सत्य ने कहा कि “मूर्ख, तूने जो काम किए केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये। इसी प्रतिष्ठा के प्राप्त होने की तेरी भावना रही है और इसी प्रतिष्ठा के लिये तूने अपनी आप पूजा की। रे मूर्ख, सकल जगत्स्वामी घट-घट-अंतर्यामी, क्या ऐसे मनरूपी मंदिरों में भी अपना सिंहासन बिछने देता है, जो अभिमान और प्रतिष्ठाप्राप्ति की इच्छा इत्यादि से भरा है ? यह तो उसकी बिजली पड़ने के योग्य है।” सत्य का इतना कहना था कि सारी पृथिवी एकबारगी कांप उठी, मानों उसी दम टुकड़ा टुकड़ा हुआ चाहती थी, आकाश में ऐसा शब्द हुआ कि जैसे प्रलयकाल का मेघ गरजा। मंदिर की दीवारें चारों ओर से अड़अड़ाकर गिर पड़ीं, मानो उस पापी राजा को दबा ही लेना चाहती थीं। उस अहंकार की मूर्ति पर एक ऐसी बिजली गिरी कि वह धरती पर औंधे मुंह आ पड़ी। ‘त्राहि माम्, त्राहि माम्, मैं डूबा,’ कहके भोज जो चिल्लाया तो आंख उसकी खुल गई और सपना सपना हो गया।

इस असें में रात बीतकर आसमान के किनारों पर लाली दौड़ आई थी, चिड़ियां चहचहा रही थीं, एक ओर से शीतल मंद सुगंध पवन चला आता था, दूसरी ओर से बीन और मृदंग की ध्वनि। बंदीजन राजा का यश गाने लगे, हंकारि हर तरफ काम को दीड़े, कमल खिले, कुमुद कुम्हलाए। राजा पलंग से उठा पर जी भारी, माथा

थामे हुए, न हवा अच्छी लगती थी, न गाने बजाने की कुछ सुध-बुध थी। उठते ही पहले उसने यह हुक्म दिया कि “इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पंडित हों जल्द उनको मेरे पास लाओ। मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब यह सारा खटराग सपना मालूम होता है। उस सपने के स्मरण ही से मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।” राजा के मुख से हुक्म निकलने की देर थी, चोबदारों ने तीन पंडितों को जो उस समय वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य और बृहस्पति के समान प्रख्यात थे, बात की बात में राजा के सामने ला खड़ा किया। राजा का मुंह पीला पड़ गया था, माथे पर पसीना हो आया था। उसने पूछा कि “वह कौन सा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे?” उनमें से एक बड़े बूढ़े पंडित ने आशीर्वाद देकर निवेदन किया कि “धर्मराज धर्मावतार, यह भय तो आपके शत्रुओं को होना चाहिए। आपसे पवित्र पुण्यात्मा के जी में ऐसा संदेह क्यों उत्पन्न हुआ? आप अपने पुण्य के प्रभाव का जामा पहन के बेखटके परमेश्वर के सामने जाइए, न तो वह कहीं से फटा कटा है और न किसी जगह से मैला कुचैला है।” राजा क्रोध करके बोला कि “बस अपनी वाणी को अधिक परिश्रम न दीजिए और इसी दम अपने घर की राह लीजिए। क्यों आप फिर उस पर्दे को डाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे सामने से हटाया है? बुद्धि की आंखों को बंद किया चाहते हैं जिन्हें सत्य ने खोला है? उस पवित्र परमात्मा के सामने अन्याय कभी नहीं ठहर सकता। मेरे पुण्य का जामा उसके आगे निरा चीथड़ा है। यदि वह मेरे कामों पर निगाह करेगा तो नाश हो जाऊंगा, मेरा कहीं पता भी न लगेगा।”

इतने में दूसरा पंडित बोल उठा कि “महाराज परब्रह्म परमात्मा जो आनंद-स्वरूप है उसकी दया के सागर का कब किसी ने वारापार पाया है, वह क्या हमारे इन छोटे छोटे कामों पर निगाह किया करता है, वह कृपा-दृष्टि से सारा बेड़ा पार लगा देता है।” राजा ने आंखें दिखलाके कहा कि “महाराज! आप भी अपने घर को सिधारिए। आपने ईश्वर को ऐसा अन्यायी ठहरा दिया है कि वह किसी पापी को सजा नहीं देता, सब धान बाईस पैसेरी तोलता है, मानों हरबोंगपुर का राज करता है। इसी संसार में क्यों नहीं देख लेते जो आम बोता है वह आम खाता है और जो बबूल लगाता है वह कांटे चुनता है। क्या उस लोक में जो जैसा करेगा

सर्वदर्शी घट-घट-अंतर्दामी से उसका बदला वैसा ही न पावेगा ? सारी सृष्टि पुकारे कहती है, और हमारा अंतःकरण भी इस बात की गवाही देता है कि ईश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा ; जो जैसा करेगा वैसा ही उससे उसका बदला पावेगा ।”

तब तीसरा पंडित आगे बढ़ा और उसने यों जबान खोली कि “महाराज ! परमेश्वर के यहां हम लोगों को वैसा ही बदला मिलेगा कि जैसा हम लोग काम करते हैं । इसमें कुछ भी संदेह नहीं, आप बहुत यथार्थ फर्माते हैं । परमेश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा, पर वे इतने प्रायश्चित्त और होम और यज्ञ और जप, तप, तीर्थ-यात्रा किस लिये बनाए गए हैं ? वे इसी लिये हैं कि जिसमें परमेश्वर हम लोगों का अपराध क्षमा करे और वैकुण्ठ में अपने पास रहने की ठीर देवे ।” राजा ने कहा “देवताजी, कल तक तो मैं आपकी सब बात मान सकता था लेकिन अब तो मुझे इन कामों में भी ऐसा कोई दिखलाई नहीं देता जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुण्यात्मा हो जावे । वह कौन सा जप, तप, तीर्थयात्रा, होम, यज्ञ और प्रायश्चित्त है जिसके करने से हृदय शुद्ध हो और अभिमान न आ जावे ? आदमी को फुसला लेना तो सहज है पर उस घट घट के अंतर्दामी को क्योंकर फुसलावे ! जब मनुष्य का मन ही पाप से भरा हुआ है तो फिर उससे पुण्य कर्म कोई कहां से बन आवे । पहले आप उस स्वप्न को सुनिए जो मैंने रात को देखा है तब फिर पीछे वह उपाय बतलाइए जिससे पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पाता है ।”

निदान राजा ने जो कुछ स्वप्न रात में देखा था, सब ज्यों का त्यों उस पंडित को कह सुनाया । पंडित जी तो सुनते ही अवाक् हो गए, उन्होंने सिर झुका लिया । राजा ने निराश होकर चाहा कि तुषानल में जल मरे पर एक परदेशी आदमी सा, जो उन पंडितों के साथ बिना बुलाए घुस आया था, सोचता विचारता उठकर खड़ा हुआ और धीरे से यों निवेदन करने लगा—“महाराज, हम लोगों का कर्त्ता ऐसा दीनबंधु कृपासिंधु है कि अपने मिलने की राह आप ही बतला देता है, आप निराश न हूजिए पर उस राह को ढूंढ़िए । आप इन पंडितों के कहने में न आइए पर उसी से उस राह के पाने की सच्चे जी से मदद मांगिए ।” हे पाठक जनो ! क्या तुम भी भोज की तरह ढूंढ़ते हो और भगवान् से उस राह के मिलने की प्रार्थना

करते हो ? भगवान् तुम्हें ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारे अंतःकरण का आशीर्वाद है ।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।

—राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द'

खड़ी बोली

जिस प्रकार हिन्दी उर्दू को सम्मिलित रूप देने के लिये हिन्दुस्तानी नाम एक विशेष कारण से—हिन्दी उर्दू दोनों का एक शब्दद्वारा बोध कराने के लिये—पड़ा, इसी तरह आम बोलचाल की भाषा के अर्थ में 'खड़ी बोली' नाम का प्रयोग भी चल पड़ा है । इसकी उत्पत्ति 'हिन्दुस्तानी' नाम के बाद हुई मालूम होती है । किसी प्राचीन ग्रन्थ में यह नाम नहीं पाया जाता ।

हिन्दी कवि पहले ब्रजभाषा में ही कविता किया करते थे, चाहे वे भारत के किसी प्रान्त के निवासी हों । जब हिन्दी गद्य का प्रचार पर्याप्त रूप में हो गया, उसमें अनेक पत्र पत्रिकायें निकलने लगीं, तब हिन्दी कविता की भाषा के लिये भी आन्दोलन उठा कि हिन्दी कविता भी गद्य की उसी, बोल-चाल की और लिखने-पढ़ने की भाषा में होनी चाहिये, ब्रजभाषा में नहीं । इस आन्दोलन को विशेष रूप से उठाने वाले स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री आदि कुछ महानुभाव थे । यह आन्दोलन कुछ दिनों तक बड़े जोर से चला, जिसमें हिन्दी के बहुत से महारथी, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित श्रीधर पाठक आदि, सम्मिलित थे । ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली, के इस आन्दोलन में, इस नाम का प्रयोग, ब्रजभाषा के मुक्ताविले में, बार बार किया गया । बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु ने अपनी पुस्तक 'अग्रवालों की उत्पत्ति' (सम्बत् १९२८ विक्रमी) की भूमिका में लिखा है—

“इनका (अग्रवालों का) मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रान्त है, और इनकी बोली, स्त्री और पुरुष सब की खड़ी बोली अर्थात् उर्दू है ।”

भारतेन्दु जी के इस कथन का यह निष्कर्ष है कि वह बोलचाल की हिन्दी उर्दू में भेद नहीं मानते थे, और उन्होंने 'खड़ी बोली' का प्रयोग यह हिन्दुस्तानी के पर्याय रूप में ही किया है। आजकल तो हिन्दी वालों में हिन्दी के लिए 'खड़ी बोली' नाम की ही तूती बोलती है—वर्तमान प्रचलित हिन्दी के लिये 'खड़ी बोली' नाम का ही प्रयोग सर्वाधिक होता है।

भारतेन्दुजी ने अपनी 'हिन्दी भाषा' नामक पुस्तक में खड़ी बोली का 'नई भाषा' नाम भी लिखा है। बाबू हरिश्चन्द्र जी हिन्दी-कविता के लिये खड़ी बोली को उपयुक्त नहीं समझते थे, इसमें ब्रजभाषा के पक्षपाती थे। उन्होंने खड़ी बोली की कविता के उदाहरण में यह दोहा लिखा है, जिसका शीर्षक 'नई भाषा की कविता' है—

भजन करो श्रीकृष्ण का मिल करके सब लोग ।

सिद्ध हो गया काम औ छूटेगा सब सोग ॥

(हिन्दी भाषा, पृष्ठ १०)

बाबू हरिश्चन्द्र जी से पहले भी इस नाम का प्रयोग कहीं किसी ने किया हो, इसका पता नहीं चलता। भाषा का खड़ी बोली नाम क्यों और कैसे पड़ा, इसकी निरुक्ति या वज्र तसमिया क्या है, इस पर भी कहीं कुछ लिखा नहीं मिलता। स्वर्गीय पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने एक जगह खड़ी बोली का जिक्र-खैर बड़े अच्छे ढंग से किया है, जिसमें इस शब्द की निरुक्ति की विनोदात्मक झलक पाई जाती है, और इसके लक्षण तथा स्वरूप की भी। गुलेरी जी ने लिखा है—

“खड़ी बोली या पक्की बोली या रेखता या वर्तमान हिन्दी के आरम्भ-काल के गद्य और पद्य को देखकर यही जान पड़ता है कि उर्दू रचना में फ़ारसी अरबी तत्समों या तद्भवों को निकाल कर संस्कृत या हिन्दी तत्सम और तद्भव रखने से हिन्दी बना ली गई है। इसका कारण यही है कि हिन्दू तो अपने घरों की प्रादेशिक और प्रान्तीय बोली में रेंगे थे, उनकी परम्परागत मधुरता इन्हें प्रिय थी। विदेशी मुसलमानों ने आगरे, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ की “पड़ी” भाषा को “खड़ी” कर अपने लश्कर और समाज के लिये उपयोगी बनाया। किसी प्रान्तीय भाषा से उनका परम्परागत प्रेम न था। उनकी भाषा सर्व-साधारण की या राष्ट्र-भाषा हो चली। हिन्दू

अपने-अपने प्रान्त की भाषा को न छोड़ सके। अब तक यही बात है। हिन्दू घरों की बोली प्रादेशिक है, चाहे लिखा-पढ़ी और साहित्य की भाषा हिन्दी हो; मुसलमानों में बहुतों के घर की बोली खड़ी बोली है। वस्तुतः उर्दू कोई भाषा नहीं है, हिन्दी की विभाषा है। किन्तु हिन्दुई भाषा बनाने का काम मुसलमानों ने बहुत कुछ किया, उसकी सार्वजनिकता भी उन्हीं की कृपा से हुई। फिर हिन्दुओं में जागृति होने पर उन्होंने हिन्दी को अपना लिया, हिन्दी गद्य की भाषा लल्लूजीलाल के समय से आरम्भ होती है, उर्दू गद्य उससे पुराना है; खड़ी बोली की कविता हिन्दी में नई है। अभी तक ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का झगड़ा चल ही रहा था। उर्दू पद्य की भाषा उसके बहुत पहले हो गई है। पुरानी हिन्दी गद्य और पद्य खड़े रूप में मुसलमानी है। हिन्दू कवियों का यह सम्प्रदाय रहा है कि हिन्दू पात्रों से प्रादेशिक भाषा कहलाते थे और मुसलमान पात्रों से खड़ी बोली।”

हिन्दी के कुछ और नाम

जिन नामों का उल्लेख उपर हो चुका है, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य नाम भी हैं, जिनका प्रयोग हिन्दी भाषा के अर्थ में, कहीं विशेषण रूप से और कहीं विशेष्य रूप से, किया जाता है, यथा—देवनागरी या नागरी, आर्य भाषा, राष्ट्रभाषा और राज भाषा। इनमें से नागरी यद्यपि लिपि-विशेष या वर्णमाला का नाम है, पर कुछ लोग इसका प्रयोग भाषा के अर्थ में भी करते हैं। तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति ‘आनन्द-कादम्बिनी’ के सम्पादक स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमधन’ ने अपने सभापति के भाषण में कहा था—

“मैं सदा से उसे (हिन्दी को) ‘नागरी भाषा’ ही कहता और लिखता आया हूँ। वरञ्च “आनन्द-कादम्बिनी” के आरम्भ ही के अङ्क में मैंने “नागरी भाषा वा इस देश की बोलचाल” शीर्षक एक लेख लिखना आरम्भ किया था। कुछ लोग इसे ‘आर्यभाषा’ भी कहते हैं, परन्तु वास्तव में यह नाम भी ठीक नहीं है। मेरी समझ में इसका “भारतीय नागरी भाषा” नाम होना चाहिये।”

‘नागरी’ नाम के औचित्य के सम्बन्ध में ‘प्रेमधन जी’ ने जो हेतु दिया है, उसे भी सुन लीजिये—

“कितने कहते हैं कि नागरी तो वर्णमाला का नाम है भाषा का नहीं, किन्तु उन्हें जानना चाहिये कि भाषा और अक्षर का नित्य सम्बन्ध है। संस्कृत वा पारसी (फारसी), उर्दू वा अंगरेजी में लिखो कहने से उसी अक्षर का बोध होता है, जिसमें वह भाषा लिखी जाती है। जैसे उर्दू व अंगरेजी के अक्षर अपने दूसरे नाम रखते हुए भी इन भाषाओं के साथ इन्हीं के अक्षर का अर्थ देते हैं, वैसे ही नागरी वर्णमाला का सम्बन्ध नागर वा नागरी भाषा के साथ दोनों प्रकार से अटल है, जैसे कि पाली के अक्षर और भाषा दोनों का एक शब्द से बोध होता है।”

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ में प्रयुक्त ‘नागरी’ शब्द हिन्दी के इसी नाम की ओर इशारा करता मालूम होता है, क्योंकि नागरी प्रचारिणी सभा के उद्देश में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि इन दोनों ही का प्रचार सम्मिलित है, केवल नागरीलिपि का नहीं।

आर्यभाषा—हिन्दी के अर्थ में ‘आर्यभाषा’ शब्द का प्रचार और व्यवहार करने वाले सम्प्रदाय में आर्यसमाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी प्रमुख हैं। उन्होंने अपनी पुस्तकों में हिन्दी की जगह सर्वत्र ‘आर्यभाषा’ शब्द का ही प्रयोग किया है। पुराने खगाल के कट्टर आर्यसमाजी सज्जन आज भी इस शब्द के प्रचार के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। गुरुकुलों के अधिवेशनों के साथ जो भाषा-सम्बन्धी परिषद् वा सम्मेलन होते हैं, उनके नाम नागरी व हिन्दी सम्मेलन न होकर ‘आर्यभाषा-सम्मेलन’ ही रखे जाते हैं। आर्यसमाजियों के अतिरिक्त भी कुछ लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्य-सेवी ‘आर्यभाषा’ नाम के समर्थक और पोषक रहे हैं, और हैं।

भागलपुर के चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में उसके सभापति महात्मा मुन्शीराम जी (बाद को स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने अपने भाषण में हिन्दी के स्थान में सर्वत्र ‘आर्यभाषा’ शब्द का ही प्रयोग किया है, और इस शब्द के प्रयोग के औचित्य में यह हेतु दिया है—

“मैंने कई बार “आर्यभाषा” शब्द का प्रयोग किया है। जिसे आप “हिन्दी” कहते हैं उसे मैं आर्यभाषा कह कर पुकारता हूँ। इसका मुख्य कारण तो यह है कि आपके ही एक पूर्व माननीय सभापति के कथनानुसार इस भाषा की बुनियाद उस समय पड़ चुकी थी, जब यह देश हिन्दुस्तान नहीं वरन् आर्यावर्त कहलाता

था। फिर इस भाषा को हम केवल हिन्दुओं की ही भाषा नहीं बनाना चाहते, प्रत्युत सारे देश की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, जिसमें जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई—सभी सम्मिलित हैं, इसलिये मैं इसे आर्यभाषा कहकर पुकारता हूँ।”

इस प्रकार आपने ‘आर्यभाषा’ शब्द का प्रयोग ‘हिन्दुस्तानी’ के अर्थ में किया है ; ‘आर्यभाषा’ अर्थात् आर्यावर्त ‘हिन्दुस्तान’की भाषा।

इसके बाद, अगले वर्ष, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लखनऊ वाले पञ्चम अधिवेशन में भी हिन्दी के बजाय ‘आर्यभाषा’ शब्द के व्यवहार पर कुछ चर्चा चली थी।

‘राष्ट्र-भाषा’ हिन्दी का नया नाम है, जो कभी विशेषण के रूप में और कभी विशेष्य के रूप में प्रयुक्त होता है। कभी ‘राष्ट्रभाषा हिन्दी’ और कभी केवल ‘राष्ट्रभाषा’ शब्द से ही हिन्दी का बोध कराया जाता है। इस शब्द का जन्म और प्रचार विशेष रूप से राजनीतिक और साहित्यिक प्रगति के कारण हुआ है। यह बात सिद्ध रूप से मान ली गई है कि अपने व्यापक रूप और वाञ्छनीय गुणों के कारण हिन्दी ही देश की भाषा—राष्ट्र-भाषा—बन सकती है। इसी आधार पर हिन्दी का यह नया नामकरण हुआ है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अतिरिक्त हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें भी इस नाम का विशेष रूप से प्रचार कर रही हैं।

पिछले चौदह-पन्द्रह वर्षों से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये कांग्रेस और प्रान्तीय राजनीतिक कान्फरेन्सों के साथ भी राष्ट्र-भाषा सम्मेलन हुआ करते हैं। यहाँ यह निवेदन कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐसे सम्मेलन जहाँ हिन्दी-लिपि के प्रचार पर जोर देते हैं, वहाँ भाषा को हिन्दुस्तानी बनाने का आदेश करते हैं। इसी लिये इन सम्मेलनों में हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी सभी लोग समान भाव से भाग लेते हैं।

राज-भाषा—कुछ विशेष विचारशील और दूरदर्शी विद्वानों की यह नई सूझ है कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा, नाम या विशेषण के रूप में, भारत की भाषा की ‘भावनी संज्ञा’ राजभाषा हो सकती है—कभी आगे चलकर वह ‘राज-भाषा’ के नाम से पुकारी जा सकती है— राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। इस मत का प्रतिपादन प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर श्री धीरेन्द्र

वर्मा, एम० ए०, ने अपनी हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान नामक पठनीय पुस्तक में बड़ी योग्यता और मार्मिकता से किया है। उन्होंने लिखा है—

“हिन्दुस्तानी का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। महासभा की कार्यवाही बहुत कुछ ‘हिन्दुस्तानी’ में होने लगी है। सम्भव है भविष्य की भारत सरकार की राजभाषा हिन्दुस्तानी हो जावे, किन्तु तो भी यह सम्पूर्ण भारत के लोगों की मातृ-भाषा के समान नहीं हो सकती। हिन्दुस्तानी का भारत में अधिक से अधिक वैसा ही स्थान हो सकेगा जैसा कि आजकल अंग्रेजी शासन में अंग्रेजी का है, मुसलमान काल में फ़ारसी का था, गुप्त साम्राज्य में संस्कृत, तथा मौर्य साम्राज्य में पाली का था। घोषणा-पत्र हिन्दुस्तानी में निकल सकते हैं, और सम्भव है उन्हें सम्पूर्ण भारत में थोड़ा बहुत समझ भी लिया जाय—यद्यपि इसमें सन्देह भी है, क्योंकि अंग्रेजी घोषणाओं को समझने के लिय आजकल भी प्रान्तिक भाषाओं में अनुवाद करना पड़ता है, और अशोक के आदेशों में भी प्रान्तिक प्राकृतों का प्रभाव पाया जाता है—किन्तु सम्पूर्ण भारत के लोगों के हृदयों तक तो हिन्दुस्तानी की पहुँच कभी नहीं हो सकती। चण्डीदास, तुकाराम, नरसी मेहता तथा बाबा नानक की सुधा-सूक्तियों के लिये तृप्ति आत्माओं की तृप्ति ‘रामचरित मानस’ अथवा सूरसागर कर सकेगा? ऐसी आशा करना अस्वाभाविक है। हिन्दुस्तानी भारत की ‘राजभाषा’ भले ही हो जाय, किन्तु ‘राष्ट्रभाषा’ नहीं हो सकती।”—(पृष्ठ १२-१३)

शैली भेद से ठेठ हिन्दी, शुद्ध हिन्दी और खिचड़ी हिन्दी इत्यादि भाषा के कुछ अटपटे नाम और भी धर लिये गये हैं, जिनका उल्लेख कुछ लेखकों ने किया है, पर इनका अन्तर्भाव इन्हीं पूर्वोक्त नामों में हो जाता है। इसलिये इनपर पृथक् विचार करने की आवश्यकता नहीं।

संसार में एक वस्तु के अनेक नाम होते हैं। प्रत्येक नाम का कुछ न कुछ कारण भी होता है। फिर भी नाम भेद से वस्तु में भेद नहीं हो जाता—जुदा जुदा नाम होने पर भी चीज़ एक ही रहती है। नाम एक प्रकार की उपाधि है, जिसे तात्त्विक दृष्टि से वेदान्त में मिथ्या बतलाया है। फिर भी व्यवहार में बहुधा यह नाम भेद ही मतभेद और सम्प्रदाय-भेद का कारण बन जाता है। एक इष्टदेव के भिन्न भिन्न नामों को लेकर उपासक लोग आपस में लड़ने झगड़ने लगते

हैं, और नामभेद के ही कारण अपने उपास्य या इष्टदेव के स्वरूप-भेद की न्यायी कल्पना कर लेते हैं। इस प्रकार एक ही वस्तु नाम-भेद के कारण अनेक रूप धारण कर लेती है। अन्त में नाम-भेद की यही मिथ्या भ्रान्ति उपासकों के कलह का कारण बन जाती है।

हमारी हिन्दी भाषा एक थी, और एक है ; पर हिन्दी और उर्दू के नाम-भेद से उसके दो जुदा जुदा रूप माने जाने लगे। उसके उपासकों ने, अपनी अपनी रुचि और संस्कृति के अनुसार, उसकी विभिन्न आकार-प्रकार की दो मूर्तियाँ बनाकर खड़ी कर दी हैं। भाषा देश को एकता के सूत्र में बाँधने का—जातीयता का—कारण होती है ; लेकिन दुर्भाग्य से यहाँ उल्टी बात हो रही है। एक ही भाषा, मिथ्या नामभेद के कारण भयङ्कर सम्प्रदाय-भेद का कारण बन रही है। संसार में और कहीं ऐसा अनोखा उदाहरण ढूँढ़े भी न मिलेगा। यह जितनी आश्चर्य की बात है, उतनी ही दुर्भाग्य और दुःख की भी। नाम-भेद के कारण भाषा में भेद कैसे पड़ गया—हिन्दी और उर्दू को जुदा जुदा करने वाले कारणों पर ठंडे दिल से विचार करने की और, हो सके तो, उन्हें दूर करने की बड़ी जरूरत है।

—पंडित पद्मसिंह शर्मा

कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता

कवि स्वभाव ही से उच्छृङ्खल होते हैं, वे जिस तरफ झुक गये, झुक गये। जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया ; जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठा कर न देखा। यह उच्छृङ्खलता या उदासीनता सर्व-साधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। कौच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी का निषाद द्वारा वध किया गया, देख जिस कवि-शिरोमणि

का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और जिसके मुख से “मा निषाद” इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वही पर दुःख-कातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय, एक नवपरिणीता दुःखिनी वधू को बिलकुल ही भूल गया। विपत्तिविधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने प्रकट न की—उसकी खबर तक न ली।

बाल्मीकि-रामायण का पाठ किंवा पारायण करनेवालों को ऊर्मिला के दर्शन सबसे पहिले जनकपुर में सीता, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ होते हैं। सीता की बात तो जाने ही दीजिए, उनके और उनके जीविताधार रामचन्द्र के चरित्र-चित्रण ही के लिए रामायण की रचना हुई है। माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय में कोई विशेषता नहीं। क्योंकि आग से भी अधिक संताप पैदा करने वाला पति-वियोग उनको हुआ ही नहीं। रही बाल-वियोगिनी देवी ऊर्मिला, सो उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने ! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों ? इस सर्वसुखवंचिता के विषय में इतना पक्षपात-कार्पण्य क्यों ? क्या इसलिये कि इसका नाम इतना श्रुतिसुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापसजनों का शरीर सदैव शीतातप सहने के कारण कठोर और कर्कश होता है—पर नहीं, आपका काव्य पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता-प्रेमी नहीं। भवतु नाम। हम इस उपेक्षा का एक मात्र कारण भगवती ऊर्मिला का भाग्यदोष ही समझते हैं। हा हतविधिलसते ! परमकारुणिकेन मुनिना बाल्मीकिनापि विस्मृतासि।

हाय बाल्मीकि ! जनकपुर में तुम ऊर्मिला को सिर्फ एक बार, वैवाहिक-वधू-वेश में दिखा कर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर सुसराल में इसकी सुधि यदि आपको न आई थी तो न सही पर, क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण-समय में भी उसके दुःखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जँचा ? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैयारियाँ हो रही थीं, जब राजान्तःपुर ही क्यों सारा नगर नन्दन-वन बन रहा था, उस समय नवला ऊर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा ? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्य-सिंहासन पर आसीन देख ऊर्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया ? हाय ! वही ऊर्मिला एक घण्टे बाद, राम-जानकी के साथ निज पति को १४ वर्ष

के लिए बन जाते हुए देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती हुई क्या आपके नयनगोचर नहीं हुई? फिर भी उसके लिए आपकी "वचने दरिद्रता"! ऊर्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी। सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा! पर इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी न लेने दिया! जिस दिन राम और लक्ष्मण, सीतादेवी के साथ, चलने लगे—जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अन्धकार में, नगरवासियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्यु-मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको ऊर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा; इतनी उपेक्षा!

लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृस्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उन्होंने राज-पाट छोड़ कर अपना शरीर रामचन्द्र को अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की। पर ऊर्मिला ने इससे भी बढ़ कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मसुखोत्सर्ग उसने तब किया जब उसे व्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी १४ वर्ष पति वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोदित्व को प्राप्त होते ही जिस ऊर्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए, अपने सुख सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदि कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता!

पति-प्रेम और पति-पूजा की शिक्षा सीता देवी को जहाँ मिली थी वहीं ऊर्मिला को भी मिली थी। सीता देवी की सम्मति

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।

पिय बिन् तियहि तरनि ते ताते ॥

ऊर्मिला की क्या यह भावना न थी? जरूर थी। दोनों एक ही घर की थी। ऊर्मिला भी पतिपरायणता-धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने लक्ष्मण के साथ वन-गमन की हठ, जान-बूझ कर, नहीं की। यदि वह

भी साथ जाने को तैयार होती, तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता, और ऊर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यही सोच कर ऊर्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। बाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कवितामर्मज्ञ को आन्तरिक वेदना न होगी ?

तुलसीदासजी ने भी ऊर्मिला पर अन्याय किया है। आपने इस विषय में आदि कवि का ही अनुकरण किया है। “नानापुराणनिगमागमसम्मत” लेकर जब रामचरित-मानस की रचना करने की घोषणा की थी, तब यहाँ पर आदि काव्य को ही वचनों का आधार मानने की वैसी कोई जरूरत न थी। आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को ऊर्मिला से नहीं मिलने दिया। माता से मिलने के बाद, झट कह दिया—

गये लषण जहँ जानकिनाथा ।

आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक “लषण” पर इतनी सख्ती क्यों ? अपने कमण्डलु के करुणावारि का एक भी बूँद आपने ऊर्मिला के लिए न रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई में ऊर्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसी के मुँह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के वनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनाएँ उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थीं। ऊर्मिला को जनकपुर से साकेत पहुँचा कर उसे एक दम ही भूल जाना अच्छा नहीं हुआ।

हाँ, भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम-लक्ष्मण और जानकी के वन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी ऊर्मिला एक बार याद आ गई है। चित्र-फलक पर ऊर्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा—“इयमप्यपरा का ?” अर्थात् लक्ष्मण कौन है ? इस प्रकार देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं। इसमें सरसता है। लक्ष्मण इस बात को समझ गये। वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे—ऊर्मिला को सीता देवी पूछ रही हैं। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही ऊर्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके

हाथ से वह ढक गया। कैसे खेद की बात है कि ऊर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र कवियों के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढँकता आया।

—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

पीछे मत फेंकिये

माई लार्ड ! सौ साल पूरे होनेमें कई महीनोंकी कसर है। उस समय ईष्ट इन्डिया कम्पनीने लार्ड काननवालिसको दूसरी बार इस देशका गवर्नर जनरल बनाकर भेजा था। तबसे अब तक आप ही को भारतवर्षका फिरसे शासक बनकर आनेका अवसर मिला है। सौ वर्ष पहलेके उस समयकी ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तबमें और अबमें कितना अन्तर हो गया है, क्यासे क्या हो गया है ? जागता हुआ रङ्ग अतिचिन्ताका मारा सो जावे और स्वप्नमें अपने को राजा देखे, द्वारपर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैलाके अबुल हसनकी भांति कोई तरुण युवक प्यालेपर प्याला उड़ाता घरमें बेहोश हो और जागनेपर आंखें मलते मलते अपनेको बगदादका खलीफा देखे, आलीसान सजे महलकी शोभा उसे चक्करमें डाल दे, सुन्दरी दासियोंके जेवर और कामदार वस्त्रोंकी चमक उसकी आंख में चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतोंकी मधुर ध्वनि उसके कानोंमें अमृत ढालने लगे—तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो, जितना सौ साल पहलेके भारतमें अंगरेजी राज्य की दशाको आजकलकी दशाके साथ मिलानेसे हो सकता है।

जुलाई सन् १८०५ ई० में लार्ड काननवालिस दूसरी बार भारत गवर्नर-जनरल होकर कलकत्तेमें पधारे थे। उस समय ईष्ट इन्डिया कम्पनीकी सरकारपर चारों ओर से चिन्ताओंकी भरमार हो रही थी, आशङ्काए उसे दम नहीं लेने देती थीं। हुलकरसे एक नयी लड़ाई होनेको थी। संधियासे लड़ाई चलती थी।

खजानेमें बरकत ही बरकत थी जमीनका कर वसूल होनेमें बहुत देर थी। युद्ध-स्थलमें लड़नेवाली सेनाओंको पांच-पांच महीनेसे तनखाह नहीं मिली थी। विलायत के धनियोंमें कम्पनीका कुछ विश्वास न था। सत्तर सालका बूढ़ा गवर्नर-जनरल यह सब बातें देखकर घबराया हुआ था। उससे केवल यही बन पड़ा कि दूसरी बार पदारूढ़ होनेके तीन मास पीछे गाजीपुरमें जाकर प्राण दे दिया। कई दिन तक इस बातकी खबर भी लोगोंने नहीं जानी। आज विलायतसे भारत तक दिनमें कई बार तार दौड़ जाता है। कई एक घंटोंमें शिमलेसे कलकत्ते तक स्पेशल ट्रेन पार हो जाती है। उस समय कलकत्ते से गाजीपुर जानेमें बड़े लाट को कितने ही दिन लगे थे। गाजीपुरमें उनके लिये कलकत्तेसे जल्द किसी प्रकारकी सहायता पहुंचानेका कुछ उपाय न था।

किन्तु अब कुछ और ही समय है। माई लार्ड ! लार्ड कर्नवालिसके दूसरी बार गवर्नर-जनरल होकर भारतमें आने और आपके दूसरी बार आनेमें बड़ा अन्तर है। प्रताप आपके साथ-साथ है। अङ्गरेजी राज्यके भाग्यका सूर्य मध्याह्नमें है। उस समयके बड़े लाटको जितने दिन कलकत्तेसे गाजीपुर जानेमें लगे होंगे, आप उससे कम दिनमें विलायतसे भारतमें पहुंच गये। लार्ड कर्नवालिसको आते ही दो एक देशी रईसोंके साथ लड़ाई करनेकी चिन्ता थी, आपके स्वागतके लिये कोड़ियों राजा-रईस बम्बई दौड़े गये और जहाजसे उतरतेही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्यको धन्य समझा। कितने ही वधाई देने कलकत्ते पहुंचे और कितने और चले आ रहे हैं। प्रजाकी चाहे कैसी ही दशा हो, पर खजानेमें रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिये चारों ओरसे आपकी बड़ाई होती है। साख इस समयकी गवर्नमेंटकी इतनी है कि विलायतमें या भारत में एकवार हूं करते ही रुपयेकी वर्षा होने लगती है। विलायती मंत्री आपकी मुठ्ठीमें हैं। विलायतकी जिस कन्सर्वेटिव गवर्नमेंटने आपको इस देशका वैसेराय किया, वह अभी तक बराबर शासनकी मालिक है। लिबरल निर्जीव हैं। जान ब्राइट, ग्लाडस्टोन ब्राडला जैसे लोगोंसे विलायत शून्य है, इससे आप परम स्वतन्त्र हैं। इन्डिया आफिस आपके हाथकी पुतली है। विलायतके प्रधान-मन्त्री आपके प्रिय मित्र हैं। जो कुछ आपको करना है, वह विलायतमें कई मास रह कर पहले ही वहांके शासकोंसे निश्चय कर चुके हैं। अभी आपकी

चढ़ती उमर है। चिन्ता कुछ नहीं है ! जो कुछ चिन्ता थी, वह भी जल्द मिट गयी। स्वयं आपकी विलायतके बड़े भारी बुद्धिमानों और राजनीति-विशारदोंमें गिनती है। वरञ्च कह सकते हैं कि विलायतके मंत्री लोग आपके मुंहकी ओर ताकते हैं। सम्राटका आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायतके प्रधान समाचारपत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच बीचमें आपका गुणगान सुनाना पुण्य कार्य समझते हैं। सारांश यह कि लार्ड काननवालिसके समय और आपके समयमें बड़ा ही भेद हो गया है।

संसारमें अब अङ्गरेजी प्रताप अखण्ड है। भारतके राजा अब आपके हुक्मके बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं। आपके हुक्मकी तेजी तिब्बतके पहाड़ोंकी बरफको पिघलाती है, फारिसकी खाड़ीका जल सुखाती है, काबुलके पहाड़ोंको नर्म करती है। जल, स्थल, वायु और आकाशमण्डलमें सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाममें अब अङ्गरेजी प्रतापके आगे कोई उंगली उठानेवाला नहीं है। इस देशमें एक महाप्रतापी राजाके प्रतापका वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चांद-सूरज उसके यहां रोशनी करते थे इत्यादि। पर अङ्गरेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अङ्गरेजी राज्यका मल्लाह है, पहाड़ोंकी उपत्यकाएं बैठनेके लिये कुर्सी-मूढ़े। बिजली कलें चलानेवाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़नेवाली दूती इत्यादि-इत्यादि।

आश्चर्य है माई लार्ड ! एक सौ सालमें अंगरेजी राज्य और अंगरेजी प्रतापकी तो इतनी उन्नति हो, पर उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के आधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे ! इस अपार उन्नतिके समयमें आप जैसे शासकके जीमें भारतवासियोंको आगे बढ़ानेकी जगह पीछे धकेलनेकी इच्छा उत्पन्न हो ! उनका हौसला बढ़ानेकी जगह उनकी हिम्मत तोड़नेमें आप अपनी बुद्धिका अपव्यय करें ! जिस जातिसे पुरानी कोई जाति इस धराधामपर मौजूद नहीं, जो हजार सालसे अधिककी घोर पराधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्याकी आलोचना करके विद्वान और

बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं, जिसने सदियों इस पृथ्वीपर अखंड शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्वका प्रचार किया—वह जाति क्या पीछे हटाने और धूलमें मिला देनेके योग्य है? आप जैसे उच्च श्रेणीके विद्वानके जीमें यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुतसे काम करनेके योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊँचेसे ऊँचे कामोंको कर सकते हैं या न हैं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं? श्रममें, बुद्धिमें, विद्यामें, काममें, वक्तृतामें, सहिष्णुतामें किसी बातमें इस देशके निवासी संसारमें किसी जातिके आदमियोंसे पीछे रहनेवाले नहीं हैं। वरंच दो एक गुण भारतवासियोंमें ऐसे हैं कि संसार भरमें किसी जातिके लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्थानी फारसी पढ़के ठीक फारिस-वालोंकी भांति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं। अंगरेजी बोलनेमें वह अंगरेजोंकी पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठतालूको अंगरेजोंके सदृश बना सकते हैं। पर एक भी अंगरेज ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्तानियोंकी भांति साफ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बातमें हिन्दुस्थानी पीछे रहनेवाले नहीं हैं। हां, दो बातोंमें वह अंगरेजोंकी नकल या बराबरी नहीं कर सकते हैं। एक तो अपने शरीरके काले रङ्गको अंगरेजोंकी भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्यको उनके भाग्यसे रगड़ कर बराबर नहीं कर सकते।

किन्तु इस संसारके आरम्भमें बड़ा भारी पार्थक्य होनेपर भी अन्तमें बड़ी भारी एकता है। समय अन्तमें सबको अपने मार्गपर ले जाता है। देशपति राजा और भिक्षा मांगकर पेट भरनेवाले कङ्गालका परिणाम एक ही होता है। मिट्टी मिट्टीमें मिल जाती है और यह जीतेजी लुभानेवाली दुनिया यहीं रह जाती है। कितने ही शासक और कितने ही नरेश इस पृथ्वीपर हो गये, आज उनका कहीं पता निशान नहीं है। थोड़े थोड़े दिन अपनी-अपनी नौबत बजा चले गये। बड़ी तलाशसे इतिहासके पन्ने अथवा टूटे फूटे खंडहरोंमें उनके दो चार चिन्ह मिल जाते हैं। माई लाई ! बीते हुए समयको फिर लौटा लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, आपमें भी नहीं है। दूरकी बात दूर रहे, इन पिछले सौ सालहीमें कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है? कदापि नहीं। विचारिये तो मानो कल आप आये थे, किन्तु छः साल बीत गये। अब

दूसरी बार आनेके बाद भी कितने ही दिन बीत गये तथा और बीते जाते हैं। इसी प्रकार उमरें बीत जावेंगी। युग बीत जावेंगे। समयके महासमुद्रमें मनुष्य की आयु एक छोटी सी बूंदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। आपमें शक्ति नहीं है कि पिछले छः वर्षोंको लौटा सकें, या उनमें जो कुछ हुआ है, उसे अन्यथा कर सकें। दो साल आपके हाथमें अवश्य हैं। इनमें जो चाहें कर सकते हैं। चाहें तो इस देशकी ३० करोड़ प्रजाको अपना अनुस्वत बना सकते हैं और इस देशके इतिहासमें अच्छे वैसरायोंमें अपना नाम छोड़ जा सकते हैं। नहीं तो यह समय भी बीत जावेगा और फिर आपका करने धरनेका अधिकार ही कुछ न रहेगा।

बिक्रम, अशोक, अकबरके यह भूमि साथ नहीं गई। औरङ्गजेब, अल्लाउद्दीन इसे मुट्ठीमें दबा कर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर इसे लूटके मालके साथ ऊंटों और हाथियोंपर लाद कर न ले जा सके। आगे भी यह किसीके साथ न जावेगी, चाहे कोई कितनी ही मजबूती क्यों न करे। इस समय भगवानने इसे एक और ही जातिके हाथमें अर्पण किया है, जिसकी बुद्धि, विद्या और प्रतापका संसारभरमें डङ्का बज रहा है। माई लार्ड ! उसी जातिकी ओरसे आप इस देशकी ३० करोड़ प्रजाके शासक हैं।

अब यह विचारना आपके ही जिम्मे है कि इस देशकी प्रजाके साथ आपका क्या कर्तव्य है। हजार सालसे यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जावे ? इसके गिरानेमें बड़ेसे बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ सङ्कीर्ण हृदय शासकोंकी यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है ; किन्तु इसके उठाने और सम्हालनेमें जो लाभ है, उनकी तुलना नहीं हो सकती है। इतिहासमें सदा नाम रहेगा कि अंगरेजोंने एक गिरी जातिके तीस करोड़ आदमियोंको उठाया था। माई लार्ड ! दोनों में जो बात पसन्द हो वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसन्द है ? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना ?

—बाबू बालमुकुन्द गुप्त

करुणा

जब बच्चे को सम्बन्धज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दुःख के उस भेद की नींव पड़ जाती है जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले यह देखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचन-क्रम के, स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्य-कारण-सम्बन्ध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुःख के कारण या कार्य को देखकर उनके दुःख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दुःख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब माँ झूठ-मूठ 'ऊँ ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उनके किसी भाई या बहिन को कोई मारने उठता है तो तब वे कुछ चञ्चल हो उठते हैं।

दुःख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुःख और आनन्द दोनों की श्रेणियों में रखी गई है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुःख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनन्द की श्रेणी में रक्खा है, चाहे कभी कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं को हानि पहुँच जाय पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी नहीं करेगा। लोभी महमूद ने सोमनाथ को तोड़ा ; पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको खूब सँभालकर रक्खा। नूरजहाँ के रूप के लोभी जहाँगीर ने शेर अफ़ग़ान को मरवाया पर नूरजहाँ को बड़े चैन से रक्खा।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है, उसके सुख और दुःख का बहुत-सा अंश दूसरों की क्रिया या अवस्था पर अवलम्बित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुःख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम जितना

व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं। हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दुख को देखकर भी दुखी होते हैं। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बन्द नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है ; यह और बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है हमारी दया दूर या कम हो जाय। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है।

सारांश यह कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुःख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनन्दित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद् या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान् या चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देख कर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रक्खा गया है और न उसमें वेग या प्रेरणा होती है। पर दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

जब कि अज्ञात व्यक्ति के दुःख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तब जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग होता है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित रहते हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दुःख पर हमें अवश्य अधिक करुणा होगी। किसी भोली-भाली सुन्दरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई-बन्धु को दुःख में देख हमें अधिक व्याकुलता होगी। करुणा की तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवननिर्वाह की सुगमता और कार्य-विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए।

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्त्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता या दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके सम्बन्ध या

संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होती है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म सज्जनता या दुर्जनता की कोटि में न आएगा। उसके सब कर्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अतः सब के उद्देश्यों को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख की स्थापना और दुःख का निराकरण हुआ। अतः जिन कर्मों से संसार के इस उद्देश्य के साधन हो वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दुःख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्विक हैं तथा जिस अन्तःकरण वृत्ति से इन कर्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्विक है। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है ; पर एक तो कृपा या अनुग्रह में आत्मभाव छिपा रहता है और उसकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। दूसरी बात यह कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दुःख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है।

दूसरे के उपस्थित दुःख से उत्पन्न दुःख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोविकारों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के सम्भाव्य दुःख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुःख पहुँचे, शील या साधारण सद्वृत्ति के अन्तर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता या मुरीवत ही का भाव समझा जाता है, जैसे 'उनकी आँखों में शील नहीं है,' 'शील तोड़ना अच्छा नहीं'। दूसरों का दुःख दूर करना और दूसरों को दुःख न पहुँचाना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है, पर दुःशीलता या दुर्भाव का नहीं। ऐसा मनुष्य झूठ बोल सकता है, पर ऐसा नहीं जिससे किसी का कोई काम बिगड़े या जी दुखे। यदि वह किसी अवसर पर बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जँचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है ; इसलिये नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे।

मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना,' 'बड़ों का कहना मानना' यदि नियम के अन्तर्गत हैं, शील या सद्भाव के अन्तर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया

कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाय। पर मनोरञ्जन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत-सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी-किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषतः जब इस नियमभंग द्वारा अन्तःकरण की किसी उच्च और उदार वृत्ति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निःसहाय व्यक्ति अनुचित दण्ड से बच जाय तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्बृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं। मनोवेग-वर्जित सदाचार दम्भ या झूठी कवायद् है। मनुष्य के अन्तःकरण में सात्त्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करुणा है। इसी से जैन और बौद्ध धर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

पर-उपकार सरिस न भलाई।

पर-पीड़ा सम नहि अधमाई ॥

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किसी रूप में सात्त्विक शील ही होता है। अतः करुणा और सात्त्विकता का सम्बन्ध इस बात से और भी सिद्ध होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करनेवाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनन्द आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। क्रिया में तत्पर करने वाली प्राणियों की आदि अन्तःकरण-वृत्ति मन या मनोवेग हैं। अतः इन मनोवेगों में से जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्त्विकता का आदि संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य के आचरण के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग-अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मन के वेग या प्रवृत्ति पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुन कर कार्य में प्रवृत्त हो। यदि विचार कर देखा जाय तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अन्तःकरण की सारी वृत्तियाँ केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे भावों या मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूँढ़ती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर भाव को और भावना को तीव्र करनेवाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिवर्तित हो जाता है। अतः प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है। जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुःख के परिज्ञान से होती है, वही करुणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुःख असह्य होता है, पर प्रिय जनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चित बात पर सुखी या दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है, इसी से इस प्रकार के दुःख या करुणा को किसी किसी प्रान्तिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम-जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती हैं—

वन को निकरि गए दोउ भाई।

सावन गरजै, भादों बरसै, पवन चलै पुरवाई।

कौन विरिछ तर भीजत हवै हैं राम लखन दोउ भाई। (—गीत)

प्रेम को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुलसे मथुरा चले गए जहाँ सब प्रकार का सुख-वैभव था ; पर यशोदा इसी सोच में मरती रहीं कि—

प्रात समय उठ माखन रोटी को बिन मांगे दैहै

को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन छिन आगे लैहै ?

और उठव से कहती हैं।

सँदेसो देवकी सों कहियो।

हाँ तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो ॥

उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।
जोड़ जोड़ मोंगत सोड़ सोड़ देती क्रम क्रम करि कै न्हातै ॥
तुम तो टेव जानतिहि ह्वैहो, तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहिं माखन रोटी भावै ॥
अब यह सूर मोहि निसि वासर बड़ो रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहैं करत सँकोच ॥

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं कभी-कभी घोर अनिष्ट की आशङ्का तक होती है, जैसे एक पति वियोगिनी स्त्री सन्देह करती है कि—

नदी किनारे धुआँ उठत है, मैं जानूँ कछु होय ।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय ॥

शुद्ध वियोग का दुःख केवल प्रिय के अलग हो जाने की भावना से उत्पन्न क्षोभ या विषाद है जिसमें प्रिय के दुःख या कष्ट आदि की कोई भावना नहीं रहती ।

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है । उसके जीवन का बहुत-सा अंश उसी के सम्बन्ध द्वारा व्यक्त होता है । मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है । संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है । अतः ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खण्डित हो जाना है । किसी प्रिय या सुहृद के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है । किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय या कुव्यवहार, तथा उसकी इच्छा-पूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं ।

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है । समाज-शास्त्र के पश्चिमी ग्रंथकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की

सहायता अपनी-अपनी रक्षा के विचार से की जाती है ; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देनेवाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी । मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है । मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में एक दूसरे की भी सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्थ परिणाम पर दृष्टि रखकर नहीं की जाती, बल्कि मन की स्वतः प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा से की जाती है । दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी संभावना है, इस बात या उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक, विशेषकर सच्चे, सहायक को तो नहीं रहता । ऐसे विस्तृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है ; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चञ्चल और मुण्डे-मुण्डे भिन्न वस्तु के भरोसे नहीं छोड़ती । किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज-रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी, यह समाज-शास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे । यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पञ्चायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वहीं तक होता जहाँ तक समाज-शास्त्र के वक्ता बतलाते हैं, तो हमारी दया मोटे, मुसमुण्डे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं । पर इसका बिल्कुल उलटा देखने में आता है । दुखी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी । एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं । इससे स्पष्ट है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनका धारण करनेवाला मनुष्य का छोटा-सा अन्तःकरण नहीं, विश्वात्मा है ।

दूसरों के, विशेषतः अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक पर जो वेग-रहित दुःख होता है उसे सहानुभूति कहते हैं । शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा-सा हो गया है । अब प्रायः इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है । सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं । यह छद्म-शिष्टता मनुष्य के व्यवहार-क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमशः चरती जा रही है ।

करुणा अपना बीज अपने आलम्बन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करनेवाले पर भी करुणा नहीं करता—जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है—बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है। बहुत-सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखलाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करनेवाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बंगला के उपन्यास-लेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर-स्मृति, अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लाँघता हुआ अपना देशकाल सम्बन्धी विस्तार बढ़ाता है। प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी-कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी-कभी इस विस्तार पर निर्भर रहती है। किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बड़े-बड़े अपराध कर चुका है, इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं। वे कभी तो आप से आप विषयों को मन के सामने लाते हैं; कभी किसी विषय के सामने आने पर उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्य-कारणसम्बन्ध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं जो कभी तो सब के सब एक ही भाव के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भाव को तीव्र करते हैं, कभी भिन्न-भिन्न भावों के विषय होकर प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भावों को परिवर्तित या धीमा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग या भावों को मन्द या दूर करनेवाली, स्मृति, अनुमान या बुद्धि आदि कोई दूसरी अन्तःकरण वृत्ति नहीं है, मन का दूसरा भाव या वेग ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में,

है। नीतिज्ञों और धार्मिकों का मनोविकारों को दूर करने का उपदेश घोर पाषण्ड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर सान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हें परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थों के साथ उनके उपयुक्त सम्बन्ध निर्वाह पर जोर देते हैं। यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश होता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकल जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध या घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की भी मुँह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन-निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दुःख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुःख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य हृदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है। उसकी भावुकता का नाश होता जाता है। पाषण्डी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बना बनाकर कहने लगे हैं—“करुणा छोड़ो, प्रेम छोड़ो, आनन्द छोड़ो। बस हाथ-पैर हिलाओ, काम करो।”

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात ; पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो-चार बार उसे दया उत्पन्न होगी ; पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा। यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जायगी।

बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा सकता। पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक

नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसारी परिणामों का विरोध प्रायः तीन वस्तुओं से होता है—१ आवश्यकता २ नियम और ३ न्याय। हमारा कोई नौकर बहुत बड़्ढा और कार्य करने में अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया तो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करने की कौन कहे, उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रुपया देकर लोग कोई कार्य करने पाएँ तो जो व्यक्ति रुपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे दीन अकिञ्चन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा, दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो राजा हरिश्चन्द्र के उस नियम पालन का उतना महत्त्व न दिखाई पड़ता; करुणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती है। करुणा का विषय दूसरे का दुःख है; अपना दुःख नहीं। आत्मीय जनों का दुःख एक प्रकार से अपना ही दुःख है। इससे राजा हरिश्चन्द्र के नियम-पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करुणा से नहीं।

न्याय और करुणा का विरोध प्रायः सुनने में आता है। न्याय से ठीक प्रतीकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे १०००) उधार लिया तो न्याय यह है कि वह हमें १०००) लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दण्ड मिले। यदि १०००) लेने के उपरान्त उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई तो न्याय पालने के विचार का विरोध करुणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता गिड़गिड़ाता और कान पकड़ता है तथा पूर्ण दण्ड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करुणा करने का सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रुपया चाहिए या जिसका अपराध किया गया है उसको

है, न्यायकर्त्ता या तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के १०००) अलग किए, या अपराध द्वारा जो क्षति-ग्रस्त हुआ, विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा ऐसी उच्च सद्बृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करुणा सेंट का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्त्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक् रूप से कर सकता है, जैसे ऊपर लिखे मामलों में वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हजार पाँच सौ अपने पास से दे दे या दण्डित व्यक्ति तथा उसके परिवार की ओर प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करुणा का द्वार खुला है।

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल